सुलभ-साहित्य-माला

भट्ट-निबन्धावली

[पहला भाग]

स्वर्गीय पण्डित बालकृष्ण जी भट्ट के श्रेष्ठ और सुन्दर निबन्धों का संग्रह

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल

धनञ्जय भट्ट 'सरल'



१८८१ शाक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

छठा संस्करण १५००

मूल्य १ ५० न पै

सम्मेलन मुद्रणालय प्रयाग

कृतज्ञता प्रकाश

स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी उसी सहायता से सम्मेलन इस सुलभ साहित्य-माला के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस माला में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रंथ-पुष्पों का ग्रंथन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस माला के द्वारा हिन्दी-साहित्य की जो श्रीवृद्धि हो रही है इसका मुख्य श्रेय स्वर्गीय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश को है। उनका यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

—साहित्य मन्त्री

प्रकाशकीय

स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट का हिन्दी के निर्माताओं में विशिष्ट स्थान है। आपने तन मन और धन से हिन्दी की जो सेवा की है ऐतिहासिक दृष्टि से उसका बड़ा महत्त्व है। भट्ट जी ने साहित्य के विभिन्न अंगों पर अपूर्व रचनायें की हैं। उनके निबंधों की मौलिकता सरसता और गम्भीरता साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी की अमूल्य निधि है। इस पुस्तक में आपके बत्तीस उत्तम कोटि के निबन्ध संगृहीत हैं। स्वर्गीय भट्ट जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी हो चुके हैं। ऐसी दशा में सम्मेलन का यह कर्तव्य भी था कि वह भट्ट जी की कृतियों का प्रकाशन करे। हमें पूर्ण आशा है कि इस 'भट्ट निबंधावली' के द्वारा हिन्दी में निबन्ध-साहित्य की एक विशेष कमी की पूर्ति होगी। विद्वानों और हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों का इससे विशेष उपकार होगा इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

प्रयाग
१ जनवरी १९४२

—ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'
साहित्य-मन्त्री

निवेदन

पण्डित बालकृष्ण भट्ट हिन्दी के स्वाभिमानी लेखक थे। उन्हें स्वदेश और स्व-संस्कृति का अत्यधिक प्रेम था। उनके 'हिन्दी-प्रदीप' का एक-एक पृष्ठ नहीं एक-एक शब्द हमारे इस कथन का प्रमाण है। हिन्दी-भाषी नवयुवकों को अपने इस महारथी की रचनाओं को पढ़कर अपनी आत्म-शुद्धि करनी चाहिए।

भट्ट जी की रचनाएँ पढ़ने का सौभाग्य मुझे उतना अधिक पहले नहीं मिला था। कृतज्ञ हूँ पण्डित धनञ्जय भट्ट का कि मुझे उन्होंने उनके पढ़ने का अवसर दे दिया और मेरी आँखें खुल गयीं। इसमें संदेह नहीं भट्ट जी हिन्दी के सेवक ही नहीं वे उसके सच्चे निर्माता थे।

इस 'निबन्धावली' के तैयार करने में धनञ्जय जी ने काफी अधिक परिश्रम किया है। वे भट्ट जी के पौत्र हैं और उनके पास 'हिन्दी प्रदीप' की पूरी की पूरी फाइल है। परन्तु मुख्य बात तो यह है कि उन्होंने उसका अध्ययन भी किया है। इसी से 'भट्ट-निबन्धावली' इस सुन्दर रूप में तैयार हो सकी है। मैंने तो केवल इसका प्रूफ भर पढ़ा है या फिर किसी-किसी निबन्ध का अंश निकाल दिया है तो कहीं-कहीं छापे की भूल समझ कर उसे सुधार देने की ढिठाई की है। परन्तु यह अपराध भी मैंने बहुत संयम कर इसलिए किया है कि भट्ट जी की 'मौलिकता' अक्षुण्ण रहे—उनकी वस्तु ज्यों की त्यों रहे।

इन निबन्धों को पढ़कर हिन्दी के पाठक जान सकेंगे भट्टजी कितने ऊँचे पाये के सुलेखक थे और आज हिन्दी के इस अभ्युदय-काल में भी वे उनसे कितना सीख सकते हैं। हमें विश्वास है इस निबन्धावली का हिन्दी के साहित्यिक इसके अनुरूप ही आदर करेंगे।

इंडियन प्रेस प्रयाग
१६ सितम्बर, १९४१

—देवीदत्त शुक्ल

प्राचीन कवियों और ग्रन्थकारों के जीवन-चरित्र श्रीमद्भागवत बाराही-संहिता गीता और सप्तशती की आलोचनाएँ तथा षड्दर्शन-संग्रह का भाषानुवाद आदि सब मिलाकर उन्होंने हिन्दी की अपूर्व सेवा की। कविता सम्बन्धी अनोखी सूझ उपयुक्त क्रिया उपयुक्त विशेषण अनोखी उपमा नयी गढ़न्त भावुकता के नये अर्थ संस्कृत की अनूठी उक्तियाँ संस्कृत की लोकोक्तियाँ इत्यादि कितने ही अनुपम और उपयोगी विषय भिन्न-भिन्न कर उन्होंने 'हिन्दी प्रदीप' में छापे। नाटक उपन्यास प्रहसन आदि की तो उसमें भरमार रहा करती। प्राचीन देश नगर, नदी पर्वतों आदि का खोज-पूर्ण अद्भुत वर्णन भी 'हिन्दी प्रदीप' में किया गया। 'नृपति चरितावली' नामक लेख-माला में इस देश की छोटी-बड़ी सभी रियासतों का हाल भी पूर्ण छपा। हँसी-दिल्लगी चाव की बातें भी उसमें न जाने कितनी छपती रहीं। मतलब यह कि 'हिन्दी-प्रदीप' अपने समय का एक श्रेष्ठ उपयोगी मासिक पत्र था।

इस पत्र के अधिकांश लेख स्वयं भट्ट जी के लिखे होते थे। परन्तु उन्हें उस समय के अन्यान्य सब प्रतिष्ठित लेखकों का भी सहयोग प्राप्त था जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—पं० राधाचरण गोस्वामी पं० श्रीधर पाठक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी श्री राधामोहन गोकुल जी बाबू सूर्यकुमार वर्मा पं० मधुमंगल मिश्र पं० हरिमंगल मिश्र पं० शालिग्रामप्रसाद चतुर्वेदी बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी बाबू व्रजमोहन वर्मा श्री [illegible] रामजीराम दूबे पं० जनार्दन पाण्डेय कविवर माधव शुक्ल इत्यादि।

भट्ट जी के 'हिन्दी-प्रदीप' में प्रकाशित लेखों की समालोचना भी अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं में होती रहती थी। 'श्री वेंकटेश्वर-समाचार' 'हिन्दी बङ्गवासी' 'समालोचक' इत्यादि पत्रों में कभी-कभी इनके विषय में टिप्पणियाँ लिखी गयीं। भट्ट जी ने भी उनका समुचित उत्तर दिया और उनकी खूब खरी खरी चुटकियाँ लीं।

भट्ट जी अनेक कठिनाइयों और आर्थिक संकटों का सामना करते हुए

३२ वर्ष तक जिस निष्ठा के साथ 'हिन्दी-प्रदीप' निकालते रहे, वह हिन्दी पत्रों के इतिहास में सदा चिरस्मरणीय रहेगा। आजकल के हिन्दी सम्पादकों के लिए उस समय के हिन्दी सम्पादकों की कठिनाइयों का अनुमान कर सकना भी असम्भव है। 'हिन्दी-प्रदीप' के मुख्य ग्राहकों की संख्या कभी दो सौ से अधिक नहीं हुई। भट्ट जी बराबर घाटा उठाते रहे पर उन्होंने पत्र बन्द नहीं होने दिया। वे कायस्थ-पाठशाला कालेज में संस्कृत के अध्यापक थे। जो कुछ वेतन मिलता था वह पूरा का पूरा हर महीने सीधे प्रेस का बिल चुकाने में चला जाता था और कभी-कभी तो महीने के प्रारम्भ में ही अपनी सारी तनख्वाह प्रेसवालों को ही देकर छूछे हाथ घर आते थे। पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि उन्होंने ३२ वर्ष तक पत्र का सम्पादन किया किन्तु जीवन भर में शायद ही कभी कोरे कागज पर लिखा होगा। वे अपने तमाम लेख इम्तिहान की कापियों की दूसरी ओर की कोरे अंश पर अथवा समाचार-पत्रों के रैपरों पर लिखा करते थे। उनका सारा जीवन ही लक्ष्मी और सरस्वती की परस्पर प्रतिस्पर्धा का एक जीवित उदाहरण था।

भट्ट जी किसी गरीब कुटुम्ब में पैदा हुए हों यह बात न थी। उनके पिता और भाई व्यापार करते थे। शहर में जायदाद भी थी। पर उनको पिता और भाई के धन की स्वप्न में भी चाह न थी।

कहना न होगा कि भट्ट जी भिन्न-भिन्न आर्थिक संकटों को झेलते हुए हिन्दी की ओर अविचल भक्ति के कारण लगातार ३२ वर्ष तक 'हिन्दी-प्रदीप' निकालते चले गये। अन्त में संवत् १९६७ अर्थात् सन् १९१० ई० में उनके एक लेख पर सरकार ने पत्र से जमानत माँगी। यही नहीं एक सभा का सभापतित्व करने पर उन्हें अपनी नौकरी से भी हाथ धोना पड़ा। ऐसी दशा में उन्हें अपना प्रिय पत्र 'हिन्दी-प्रदीप' बन्द कर देना पड़ा। इसके उपरान्त कालाकाँकर से निकलने वाले 'सम्राट्' नामक साप्ताहिक पत्र का उन्होंने कुछ दिन सम्पादन किया। इस प्रकार वे 'कर्मयोगी' 'मर्यादा' 'सम्राट्' इत्यादि समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में भी लेख लिखते रहे। फिर

बाबू श्यामसुन्दरदास के बुलाने पर 'सम्राट्' को छोड़कर वे काशी न
प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी-शब्दसागर' नामक बृहत् को
सम्पादन के लिये बनारस चले गये और उस पूर्ण उपयोगी काम में
पर्याप्त परिश्रम किया। दिसम्बर १९१३ ई० में वे प्रयाग लौट आ
वहीं श्रावण शुक्ल ११ तदनुसार १४ सितम्बर १९१४ को उनका
वास हो गया।

भारतेन्दु जी के बाद हिन्दी-क्षेत्र में भट्ट जी का युग कहा ज
कदाचित् कोई अत्युक्ति न होगी। उनका सम्पर्क उस समय के प्राय
बड़े-बड़े हिन्दी-साहित्यकारों से था। पं० प्रतापनारायण मिश्र पं०
चरण गोस्वामी बाबू बालमुकुन्द गुप्त पं० गोविन्दनारायण मिश
शिवनाथ मिश्र पं० श्रीधर पाठक पं० किशोरीलाल गोस्वामी पं०
श्रीप्रसाद द्विवेदी पं० मदनमोहन मालवीय बाबू गंगाप्रसाद गुप्त
से उनका अधिक परिचय और विशेष सम्बन्ध था।

भट्ट जी तेजस्वी लेखक थे। भाषा पर उनका असाधारण अ
था। उनके लेखों की भाषा विषय के अनुसार होती थी। यदि
या ट्रोल्स लिखते थे तो भाषा भी वैसी ही हास्यमयी रसीली और
चलती थी। यदि किसी पर कटाक्ष करते थे तो भाषा भी व्यंग्यपू
थी। शृङ्गार-रस लिखते थे तो भाषा भी रोचक और सौन्दर्य से पू
थी और यदि किसी गम्भीर विषय पर लिखते थे तो भाषा भी उत
गम्भीर रहती थी। परन्तु उनके सभी प्रकार के लेख पाठकों के
रंजक होते थे। यह उनके लेखों की एक विशेषता थी।

भट्ट जी के अब तक ४ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी पहली
'नूतन ब्रह्मचारी' सन् १८७७ ई० के लगभग प्रकाशित हुई थी।
अनुवाद उपन्यास है जो 'हिन्दी-प्रदीप' से उद्धृत कर पुस्तकाकार प्र
हुआ था। थोड़े ही समय में इस पुस्तक के कई संस्करण हुए और
समाज में उसका यथोचित आदर किया। इसके कुछ समय बाद
की दूसरी पुस्तक 'शिक्षा-दान' 'हिन्दी प्रदीप' से उद्धृत कर प्र

हुई। यह एक प्रहसन है इसका भी यही मान हुआ और पुस्तक हाथ हाथ बिक गयी। तीसरी पुस्तक 'दो अनाथ और एक सुजान' नाम एक प्रबन्ध 'हिन्दी-प्रदीप' से लेकर प्रकाशित हुई। यह पुस्तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में पाठ्य पुस्तक नियत की गयी। इसके बाद बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी ने भी इसे अपने यहाँ की एडमिशन परीक्षा में कोर्स-बुक नियत किया। फिर यू० पी० की टेक्स्ट-बुक कमेटी ने उसे एंग्लो वर्नाक्युलर स्कूलों में आठवें दरजे के लिये सप्लीमेन्टरी रीडर स्वीकार किया। भट्ट जी की चौथी पुस्तक साहित्य-सुमन' नाम से प्रकाशित हुई। यह भट्ट जी के 'हिन्दी-प्रदीप' में लिखे गये चुटीले रसीले २५ लेखों का सुन्दर संग्रह है। इसके भी अब तक कई संस्करण हो चुके हैं और यह भी शुरू से ही सम्मेलन की परीक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक रखी गयी है। यू० पी० गवर्नमेन्ट की टेक्स्ट-बुक-कमेटी ने इसे भी स्वीकार किया है, और हिन्दी कोविद की परीक्षा में यह पाठ्य-पुस्तक भी नियत है।

अब यह पाँचवीं पुस्तक 'भट्ट-निबन्धावली' के नाम से हिन्दी प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित की जाती है। इसमें भट्ट जी के १२ भावात्मक निबन्ध संग्रह किये गये हैं। ये सभी लेख 'हिन्दी-प्रदीप' से लिये गये हैं। प्रत्येक लेख के नीचे उसकी रचना का समय भी दे दिया गया है।

भट्ट जी की जो अब तक चार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, हिन्दी संसार में उनका यथोचित सम्मान हुआ है। वे जितनी लोकप्रिय सिद्ध हुई और उनके जितने अधिक संस्करण हुए उतने शायद बहुत कम दूसरी पुस्तकों के हुए होंगे। आशा है हिन्दी-संसार इस नूतन संग्रह का भी उसी प्रकार स्वागत करेगा।

अहियापुर, इलाहाबाद
११ दिसम्बर, १९४१

—धनञ्जय भट्ट 'सरस'

दूसरे संस्करण का वक्तव्य

'भट्ट-निबन्धावली' का यह संग्रह मैंने पंडित ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' की प्रेरणा से तैयार किया था और उन्हीं की कृपा से यह सम्मेलन द्वारा प्रकाशित भी हुआ। उन्हीं के प्रयत्न से कुछ ही दिन बाद इसका दूसरा भाग भी सम्मेलन से छपा। इस निबन्धावली का हिन्दी संसार में यथोचित सम्मान हुआ है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा प्रयाग विश्वविद्यालय की एम० ए० आदि कई परीक्षाओं में यह पाठ्य पुस्तक भी स्वीकृत हो चुकी है। इसके उत्तरोत्तर बढ़ते हुए मान को देखकर भट्टजी के कुछ अन्य निबन्धों को काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी मेरे सम्पादकत्व में अपने यहाँ "भट्ट-निबन्धमाला" के नाम से प्रकाशित किया है।

हम पाठकों के सम्मुख इनके "हिन्दी भाषा और साहित्य" सम्बन्धी निबन्धों का संग्रह भी शीघ्र ही प्रस्तुत करेंगे।

अहियापुर, प्रयाग
४ मई, १९४८

—धनञ्जय भट्ट 'सरल'

निबन्ध-सूची

भट्ट-निबन्धावली

१—परम्परा

परम्परा गतानुगतिक भेड़ियाधसान आदि कई एक मुहाविरे इसके सम्बन्ध में प्रयोग किये जाते हैं। अब सोचना चाहिये यह परम्परा है क्या बला? यह किसी श्रुति का एक टुकड़ा है? आप्तवाक्य है? आपकल्प है? धर्मशास्त्र या स्मृतिकारों की स्मृति का सिद्धान्त है? नहीं यह यावत् श्रुति-स्मृति धर्मशास्त्र मन्वत्रिविष्णुहारीत आदि अठारहों स्मृतिकारों के दिमाग की चटनी या एक्सट्रैक्ट है। केवल इतना ही नहीं वरन् 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' का निचोड़ है। यद्यपि मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना लोक विरुद्धं महावाक्य के चरितार्थ होने की प्रणाली है जिसकी कृपा से कुलपरम्परागत अनुवृत्ति के आगे महामुनि पाणिनि के सूत्रों की अनुवृत्ति झक मारती है जिसके प्रचण्ड शासन के आगे बड़े-से-बड़े सरकारी कानून जो नित्य बना करते हैं टहलने की हिम्मत नहीं कर सकते।

इस परम्परा की अनुवृत्ति को जैसा हमने अपनी लड़काई में देखा आज ६० वर्ष के उपरान्त भी वैसा ही पाते हैं अब आज भी किसी तरह का हेर-फेर उसमें न हुआ। देश की स्थिति में कितनी उलट-पलट हो गई कितने घराने राव से रंक और रंक से राव हो गये किन्तु इस परम्परा के स्थायित्व में जरा फर्क न आया और कब से इसका प्रादुर्भाव है इसका पता न लगा। हम क्या हमारे प्रपितामह के प्रपितामह की शक्ति के बाहर है। हिन्दुस्तान ऐसे गिरे देश का तो कहना ही क्या है! कौन-सी ऐसी स्वर्ग-प्रसून भूमि है कौन ऐसी सभ्यातिसभ्य जाति है जहां इस परम्परा पिशाची की प्रतिष्ठा और गौरव नहीं है बड़े-बड़े नामी देश हितैषी संशोधक और रिफार्मर सिर धुना किये इसके पीछे पड़ मर गये खप गये पर

२—कालचक्र का चक्कर

सच है "अपना चेता होत नहिं प्रभु चेता तत्काल"—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यममन्दिरम्।
शेषाः जीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥"

बराबर देख रहे हैं आज यह गये कल उनकी बारी आयी परसों उन्हें चिता पर सुला आये। पर जो बचे हुये हैं उन्होंने यही मन में ठान रखा है कि हम अजर अमर और अविनाशी हैं सदा स्थायी रहेंगे। यह तो कभी उनके कलुषित चंचल चित्त में घुसता ही नहीं कि एक दिन आवेगा कि हम भी श्मशान में ऐसी ही चिता पर सुलाये जायेंगे। न जानिये हजार लाख या करोड़ वर्ष की नींव गाड़े हुये निश्चिन्त बैठे हैं। निस्सन्देह इससे बढ़कर अचरज की बात और क्या होगी? हमारे मन में आता है कि इसी ही के लिए कई कवि ने लोग मनुष्य के जीवन को पानी का बुलबुला-सा बतला मानो चेत करा रहे हैं। पर मानें तो कोई चर्चा और क्यों चेते? किसी बात की कमी नहीं रखता न मजाक तमाशा करता है २४ घंटे के दिन रात में १६ आने की उमंग और हौसला मन में उठते रहते हैं। सच है—

"दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥"

चार यारों के बीच में एक मसखरा है आप या चाचा ताऊ, बाबा मामा बड़े लाड़ चाव दिन-रात मेरे जीवन रहते हैं और अपने प्रिय पुत्र की भोली भाली सूरत पर बार-बार पानी भी चढ़े हैं अंगुलियों गिन गिनके बीतता है बस वह समय आवे कि हम अपने ललना का ब्याह करें। वह घर वाले बहूबेटी हार मेरे लिए घर में पेट भर उसका चाँद-सा मुखड़ा देख

अपना घी चुकावें। हमारे सब मनोरथ सफल हों बड़ी-से-बड़ी महफ़िल साज-बाज पाँति की मिठाई परसें चार भाई बिरादरी का जूठन पड़े हमारा घर पवित्र हो। वर्षों के पहिले से नगर की प्रसिद्ध भारत्मनिताओं को बयाना दे दिया गया, ब्याह की तैयारियाँ हो रही थी कि अचानक ललन को ज्वर आया, दवा-दारु झाड़-फूँक टोना-टनमन में सैकड़ों रुपये फूँक डाला। कुछ भी फुरसत न हुई, गिलटी प्रगट हो आई, दो ही तीन दिन में ललन जी जहाँ के थे वहीं चल बसे।

बड़ी-से-बड़ी डिग्री हासिल किये हुये हैं, ज्ञान-मण्डली में जिनकी कुशाग्र बुद्धि की धाक है, बड़ी-बड़ी उमगें मन में भरी हुई हैं कि अपनी जीवन में हम विश्वविद्यालय को अपने नीचे करेंगे मातृभूमि के लिये हम ऐसी कोई बात कर गुजरें जिससे भारत के सपूत कहलावें बाहर विहार की वहवही से एक दिन दो-चार दस्त और के हुई दोस्तों ने समझा अजीर्ण है दौड़-धूप करने लगे इधर इनका हाल बिगड़ता ही गया, १२ घंटे के भीतर ही समाप्त हो गये। यह किसी ने न समझा कि अंतक देव ने एक बड़ा भारी कालेज खोल रक्खा है सर्वविद्या पारंगत इनको वहाँ का प्रोफेसर किया चाहते हैं। यह न्याय है या अन्याय इसका विचार कभी मन में न लाया, अधम से अधम काम करने में कभी हिचक न हुई, कई लाख और करोड़ की माया जोड़ने में बराबर महा अर्थ पिशाच रहू बाये फिर भी दिन रात सोचा करते हैं, ५० हजार फलाने असामी के बाकी हैं, एक लाख अमुक सेठ के नीचे दबा है और वह डाट धमटने पर है २५ हजार ब्याज का बिच न्याल पोखनदास से अब तक न वसूल हुआ। ऐसी ही ऐसी चिंता में व्यग्र एक रात को नींद न आई, अधिक चीत के कारण फालिज आ टूटा, जबान बन्द हो गई। मुँह टेढ़ा पड़ गया सुबह होते-होते चल बसे। साथ अपने एक पाई भी न ले गये। एक-एक पैसे के लिए चोर-चार हैं रोज का भोजन बड़ी कठिनाई से चलता है। दैव-संयोग से एक ऐसा भाग्यवान् कुल-उजागर पाया कि उसने कुल की प्रतिष्ठा चौगुनी कर दी मिट्टी छूते सोना होने लगा बरसाती नदी की बाढ़ के समान धन-सम्पत्ति सब ओर से आ उमड़ी

होने लगी। दौलत की बाढ़ के साथ-साथ हौसिले और उमंग भी बढ़ने लगे, संगीन पक्का मकान छोड़ दिया गया पहाड़ ऐसा ठोस महल खिंचने लगे जमींदारी की भी खरीद होने लगी खान-पान में नफ़ासत और नज़ाकत की तरफ़ ग़ज़ब पल्ले दर्जे तक पहुँची। अकस्मात् वह पुण्य रत्न जिसकी बदौलत यह सब कुछ था चल बसा। सूर्यास्त होने पर अन्धकार-सा छा गया जिनके मिज़ाज कुतुबमीनार की ऊँचाई तक चढ़ गये थे अब कौड़ी के तीन-तीन हो गये। इस तरह इस चालचलन की अद्भुत महिमा सुनी गई यही इसकी भी भाँति कुछ समझ में नहीं आती।

अब दूसरी ओर देखिए कुछ व्यक्ति नहीं वरन् जातियों का हाल सब का चालचलन कैसा ऐंड़ा-बेंड़ा है। कुल-व्यवस्था के सम्बन्ध में पुराण वालों की पुरानी बीमारी वाले जो चाल बैठी हो उसे तो कुछ ऐसा ही जँचता है कि यह कुल-व्यवस्था भी इसी चालचलन की विस्तृत शक्ति है। जहाँ और जब इस चाल का व्यवहार करने समर्थ है जहाँ और तब सतयुग है उसका प्रतिकूल होना ही कलियुग है। भारत पर यह चलचलन नितान्त प्रतिकूल है इसलिए यहाँ घोर कलियुग वर्त रहा है। विलायत पर अनुकूल है वहाँ शुद्ध सत्ययुग राज करता है वहाँ वालों में जो बुराइयाँ हैं वे भी भलाई में शामिल कर ली गई हैं। इसी चालचलन की प्रतिकूलता से हमारे में बड़ी-भारी जो दो एक भलाई थी वह भी बुराई और पाप समझी गई। चालचलन की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता का इससे बढ़कर दूसरा उदाहरण और क्या होगा कि आदि में जो यहाँ सौदागरी करने के वास्ते आये थे अब समग्र भारत के कश्मीर से कन्याकुमारी तक अटक से लगायत पूर्वी के राज्य के अधिकारी हो गये। यही यहाँ वाले जिनको सनातन से यहाँ की भूमि से सम्बन्ध रहा और जिनके अंग-अंग में यहीं के जलवायु का असर भरा हुआ है वे चालचलन की प्रतिकूलता से निकाल बाहर कर दिये गये [illegible] समझने और ढोर चराने लग जाते हैं जो कुछ सार पदार्थ और धन है उसको व्यापार व्यवसाय तथा लोग खींच रहा है ये उपदेश और [illegible]

। [illegible] पास [illegible] सौभाग्य प्राप्त रहे थे तो उनमें भी

उस चक्र की वक्र कुटिल गति ने ऐसा तलस्म डाल रक्खा है कि चिरकाल से दुर्भिक्ष और मरघट हमें निश्चिन्त नहीं रहने देता। इस समय कई और उपद्रवों से कुछ स्वास्थ्य था तो प्लेग अपनी बहादुरी प्रकट कर रहा है। इससे किसी तरह गला छूटेगा तो कोई दूसरी बला आ घेरेगी।

बड़े-बड़े दार्शनिक वैज्ञानिक योगी तथा भविष्य के जाननेवाले किसी ने इसका भेद न पाया कि क्यों ऐसा होता है। कोई कहते हैं, यह ईश्वर की इच्छा है, दूसरे मानते हैं नहीं संस्कार का पूर्व-संचित का यह परिणाम है— "जो जस कर सो तस फल चाखा" और जोष सिद्ध करते हैं, यह सितारों की गर्दिश है। संशोधक और रिफार्मर जुदा ही तान भर रहे हैं कि हम अपने यहाँ प्रचलित कुरीतियों को उठाय समाज का संशोधन क्यों न कर डालें जिसमें हमारे में कौमियत और एकता आवे मुल्की जोश पैदा हो कालचक्र की जो वक्रगति है ऋजु गति हो जाय। कोई कहता है यह बाल-विधवाओं की आह है, दूसरे कहते हैं यह बाल्य-विवाह का सब दोष है इत्यादि-इत्यादि। हमारे धर्म शिरोमणि इसी पर जोर दे रहे हैं कि ब्राह्मणों का मान और हिन्दू-धर्म पर विश्वास उठता जाता है उसी का यह फल है। कोई-कोई बड़े अजान हिम्मत वाले नहीं तो जानते हैं कि यह सब राजा के पाप या पुण्य का परिणाम है। जो हो वास्तव में यह ऐसा गोरख धन्धा है कुछ नहीं सुलझता।

सच पूछो तो आदमी की दानाई बिल्कुल एक हारी है तो इसी बात में कि यह कुछ हम नहीं कर सकती कि आज क्या है कल क्या होगा और इसी को इस संसार का बड़ा इंजीनियर अपने हाथ में रक्खे हुए है। यह इस कालचक्र के चक्कर ही का प्रभाव है कि रोम इन्द्रप्रस्थ अयोध्या पाटलिपुत्र कन्नौज आदि बड़ी-बड़ी राजधानियाँ जो किसी समय आदमियों का जंगल थी जिनकी लम्बाई-चौड़ाई योजन और कोसों के हिसाब से थी और जहाँ की मनुष्य-संख्या ४० लाख २० लाख १० लाख की गिनती की थी वह इस समय बहुधा तो उजाड़ घुग्घुओं के घोंसलों के लिये उपयुक्त हैं कोई-कोई नाम मात्र को अब तक विद्यमान हैं। लन्दन पेरिस प्रन

होने लगी दौलत की बाढ़ के साथ-साथ हौसिले और उमंग भी बढ़ने लगे संगीन पक्का मकान छोड़ दिया गया पाएदार ठोस गहने पिटने लगे अमीरा की थी बगीर होने लगी बात-बात में नफासत और बरखेदारी की तरा बरदाश पसले दर्जे तक पहुँची। अकस्मात् वह पुण्य-स्तल जिसकी बदौलत ए सब कुछ था चल बसा। सूर्यास्त होने पर अन्धकार-सा छा गया जिन मिजाज कुतुबमीनार की ऊँचाई तक चढ़ गये थे अब कौड़ी के तीन-ती हो गये। इस तरह इस कालचक्र की अद्भुत महिमा 'भूरी भरै' भरी ढरका की भाँति कुछ समझ में नहीं आती।

अब दूसरी ओर देखिए कुछ अकिल नहीं काम करती क्यों इस का चक्र का चक्कर ऐसा टेढ़ा-मेढ़ा है। युग-व्यवस्था के सम्बन्ध में पुराण वालों की पुरानी अकिल चाहे जो मान बैठी हो हमें तो कुछ ऐसा ही जँचता है कि यह युग-व्यवस्था भी इसी कालचक्र की विकराल गति है। जहाँ और जब इस चक्र का चक्कर अपने अनुकूल है वहाँ और तब सतयुग है उसका प्रतिकूल होना ही कलियुग है। भारत पर यह चक्कर नितान्त प्रतिकूल है इसलिये यहाँ घोर कलियुग वर्त रहा है! विलायत पर अनुकूल है वहाँ शुद्ध सतयुग राज करता है वहाँ वालों में जो बुराइयाँ हैं वे भी भलाई में शामिल कर ली गई हैं। इसी कालचक्र की प्रतिकूलता से हमारे में बची-खुची जो दो एक भलाई थी वह भी बुराई और पाप समझ ली गई।

समय की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता का इससे बढ़कर दूसरा उदाहरण और क्या होगा कि आदि में जो यहाँ सौदागरी करने के बहाने आये थे अब समस्त भारत के कश्मीर से कन्याकुमारी तक अखंड एकछत्र पृथ्वी के राज्य के अधिकारी हो गये। यहीं यहाँ वाले जिनको अनादिकाल से यहाँ की भूमि से मातृवात्सल्य रहा और जिनके नस-नस में यहाँ के जलवायु का असर घुसा हुआ है वे कालचक्र की प्रतिकूलता से निकाल बाहर कर दिये गये बैठे-बैठे झखमारते और मुँह ताकते रह जाते हैं जो कुछ सार पदार्थ और रस है उसका आनन्द एक तीसरा भोग रहा है ये तुच्छ और उच्छिष्ट ही से अपना पेट पाल लेने को परम सौभाग्य मान रहे थे सो उसमें भी

इस चक्र की वक्र कुटिल गति ने ऐसा जाल ठाट रचा है कि चिरकाल से दुर्भिक्ष और अवर्षण हमें निश्चिन्त नहीं रहने देता। इस समय मर्द और स्त्रियों से कुछ स्वास्थ्य या तो प्लेग अपनी बहादुरी प्रकट कर रहा है। इससे किसी तरह गला छूटेगा तो कोई दूसरी बला आ घेरेगी।

बड़े-बड़े दार्शनिक वैज्ञानिक योगी तथा भविष्य के जाननेवाले किसी ने इसका भेद न पाया कि क्यों ऐसा होता है। कोई कहते हैं यह ईश्वर की इच्छा है दूसरे मानते हैं नहीं संस्कार या पूर्व-संचित का यह परिणाम है— "जो जस करै सो तस फल चाखा" और लोग सिद्ध करते हैं, यह सितारों की गर्दिश है। संशोधक और रिफार्मर चिल्ला ही तान भर रहे हैं कि हम अपने यहाँ प्रचलित कुरीतियों को उठाय समाज का संशोधन क्यों न कर डालें जिसमें हमारे में कौमियत और एकता आवे सुमति जोश पैदा हो कालचक्र की जो वक्रगति है ऋजु गति हो जाय। कोई कहता है यह बाल-विधवाओं की आह है दूसरे कहते हैं यह बाल्य-विवाह का सब दोष है इत्यादि-इत्यादि। हमारे पूर्ण शिरोमणि इसी पर जोर दे रहे हैं कि ब्राह्मणों का मान और हिन्दू-धर्म पर विश्वास उठता जाता है उसी का यह फल है कोई-कोई दबी जबान हिम्मत बांध यही तो मानते हैं कि यह सब राजा के पाप या पुण्य का परिणाम है। जो हो वास्तव में यह क्या गोरख धन्धा है कुछ नहीं खुलता।

सच पूछो तो मानुषी की चैतानी अकिल एक नारी है जो इसी बात में कि यह कुछ हल नहीं कर सकती कि आज क्या है कल क्या होगा और इसी को इस संसार का बड़ा इंजीनियर अपने हाथ में रक्खे हुए है। यह इस कालचक्र के चक्कर ही का प्रभाव है कि रोम एथेन्स अयोध्या, पाटलिपुत्र कन्नौज आदि बड़ी-बड़ी राजधानियाँ जो किसी समय आठ मीलों या योजन की जिनकी लम्बाई-चौड़ाई योजन और कोसों के हिसाब से थी और यहाँ की मनुष्य-संख्या ४० लाख २० लाख १० लाख की गिनती की थी वह इस समय पूछो तो उजाड़ घुग्घुओं के घोंसलों के लिये उजाड़ है, कोई-कोई नाम मात्र को अब तक विद्यमान है। प्रमाण पैरिस कन-

कहता बंबई जो एक समय बहुधा तो उजाड़ जंगल तथा असभ्य मनु
य वहाँ अब आकाश से बात करते हुये गगनस्पृक प्रासाद स्वर्णमणि
मन्दिर खड़े हुए हैं वहाँ चंचला लक्ष्मी अपनी चंचलता से मुँह मोड़ चिर
स्थायिनी हो समुद्र की तरंग सी हिलकोरें मार रही है इत्यादि। इस काल
चक्र की महिमा का पार कौन पा सकता है तब हमारी क्षुद्र लेखनी कि
बूते पर इस चक्कर में पड़ने का अधिक साहस करे? पढ़नेवालों के वि
विनोदार्थ इतना ही सही।

जनवरी, १८८

१—संसार कभी एक सा न रहा

सूर्य चन्द्रमा पृथ्वी तथा दूसरे-दूसरे ग्रह और उनके उपग्रह आदि यावत् जगत् सब अपनी-अपनी कक्षा में चलते हुए कभी एक क्षण के लिये भी स्थिर नहीं रहते। तब इस दृश्य-जगत् को संसार "चलने वाला" कहना उचित ही है। स्थिर पदार्थ चाहे चिरकाल तक एक रूप में रहे भी पर जो चलने वाले हैं व एक ही प्रकार के और एक ही रूप में सदा क्योंकर रह सकते हैं। जो कल था सो आज नहीं है जो आज है सो कल न रहेगा। छिन-छिन में नये-नये गुण खिलते हैं। लड़के से जवान हो गये जवान से बूढ़े हो जाते हैं। वह प्यारी-प्यारी मुग्धमुखच्छवि जिसे देखते ही आँख लुभा उठती है जी लुभाता है जिसके धूलि-धूसरित स्वभाव सुन्दर सुहावने कोमल अंग-प्रत्यंग के परस-परस को भाग्यहीन जन तरसते हैं—

"चिरात्सुतस्पर्शरसज्ञतां ययौ"

उसका सब रङ्ग-ढङ्ग जवानी के आते ही अथवा यों कहिये पौगंड बीत जाने पर किशोर-अवस्था के पहुँचते ही कुछ और का और हो गया। बाल्य-अवस्था की मुग्धमाधुरी अकृत्रिम सरलता और सिधाई में सयानापन और कुटिलाई जगह करने लगी। स्वाभाविक सौन्दर्य में बनावटी सलोनापन आ समाया नई-नई सजावट की ओर जी झुक पड़ा। एक पैसे की घिरनी और छदाम के मिट्टी के खिलौने में जहाँ ब्रह्मानन्द का सुख मिलता था वहाँ अब दो-चार आनों की गिनती ही क्या है? रुपयों की बात-चीत आ लगी। लड़काई का उदार समभाव और सन्तोष नहीं एक छन में भी न रह सका। तृष्णा लालच हिर्स दोस्ती या दुश्मनी का बाजार गरम हुआ आशिकी और माशूकी का चसका लगा विषम भाव और मन की कुटिलाई ज्ञान-शक्ति बढ़ने के साथ ही साथ दिन-दिन

कलकत्ता बंबई जो एक समय बहुधा तो उजाड़ जंगल तथा दलदलमय भूमि थे वहाँ अब आकाश से बात करते हुये गगनस्पृक् आलय स्वर्णमंडित मन्दिर खड़े हुए हैं यहाँ चंचला लक्ष्मी अपनी चंचलता से मुँह मोड़ थिर स्वामिनी हो समुद्र की तरंग सी हिलकोरें मार रही है इत्यादि। इस काल-चक्र की महिमा का पार कौन पा सकता है तब हमारी क्षुद्र लेखनी किस बूते पर इस चक्कर में पड़ने का अधिक साहस करे? पढ़नेवालों के लिए विनोदार्थ इतना ही सही।

जनवरी, १९०७

३—संसार कभी एक सा न रहा

सूर्य चन्द्रमा पृथ्वी तथा दूसरे-दूसरे ग्रह और उनके उपग्रह आदि यावत् पदार्थ सब अपनी-अपनी कक्षा में चलते हुए कभी एक क्षण के लिये भी स्थिर नहीं रहते। तब इस दृश्य-जगत् को संसार "चलने वाला" कहना उचित ही है। स्थिर पदार्थ चाहे चिरकाल तक एक रूप में रहें भी पर जो चलने वाले हैं वे एक ही प्रकार के और एक ही रूप में सदा क्योंकर रह सकते हैं। जो कल था सो आज नहीं है जो आज है सो कल न रहेगा। छिन-छिन में नये-नये गुल खिलते हैं। लड़के से जवान हो गये जवान से बूढ़े हो जाते हैं। वह प्यारी-प्यारी मुग्धमुखच्छवि जिसे देखते ही आँख लुभा उठती है जो मुग्धता है जिसके धूलि-धूसरित स्वभाव सुन्दर सुहावने कोमल अंग-प्रत्यंग के दरस-परस को चाव्याहीन बन तरसते हैं—

"विरासुतलपर्यं रहतता गयी"

उसका सब रङ्ग-ढङ्ग जवानी के आते ही बदला गौं गहिरे [illegible] बीत जाने पर किशोर-अवस्था के पहुँचते ही कुछ और का और हो [illegible]। बाल्य-अवस्था की मुग्धमाधुरी अकृत्रिम सरलता और सिधाई में [illegible] पन और कुटिलाई जगह करने लगी। स्वाभाविक सौन्दर्य में बनावटी सलोनापन सा समाया नई-नई सजावट की ओर जी [illegible]। उस पैसे की पीपिनी और छदाम के पिट्ठी व खिलौने में जहाँ [illegible] सुख मिलता था वहाँ अब दो-चार आनों की गिनती ही [illegible] है? [illegible] की बात-चीत आ लगी। लड़काई का उतार चढ़ाव और [illegible] नहीं एक बात में भी न रह सका। [illegible], [illegible] सिर्फ [illegible] का बाजार गरम हुआ, अमीरी और [illegible] का [illegible] हुआ [illegible] भाव और मन की कुटिलाई [illegible] करते हैं [illegible]

अधिक होती गई। होते-होते पूरी तरुणाई तक पहुँच नीचे को खिसकने लगे गदहपचीसी को लाँघ चेहलसाली को भी डाँक अधेड़ की गिनती में आ गये। बस अब खिसके सो खिसके बाल चाँदी होने लगे सौ-सौ तरह पर खिजाब कर पुराने ठिकरे पर नई कलई की भाँति पहले का-सा-कुछ रही रंग फिर लाना चाहते हैं किचकिचाते हैं बार-बार सोचते हैं कि गई जवानी और चढ़ती उमर का बोझ हरोलाया हो जाता। बालों ही के सुफैद हो जाने के गम में डूबे बैठे थे कि दाँत जो हीरे की चमक को भी लजाते हुये मोतियों की लड़ियों की तरह सोह रहे थे कगारे पर के रूख की भाँति एक-एक कर गिरने लगे। मुख के भीतर थोड़ी-थोड़ी दूर पर मानों विन्ध्य-पर्वत का एक-एक खण्ड-सा खड़ा कर दिया गया। उधर नेत्र ने भी जवाब दिया चश्मे की हाजत हुई, दिमाग कमजोर पड़ गया। हाफिज़ा दुरुस्त न रहा। जो बात पहले एक बार के कहने या सुनने से अकिल की तराजू में मानों सदा के लिये टिक-सी गई थी उसे रटे पाहुने की भाँति बार-बार बुलाते हैं, मोलते रहते हैं, पर सिवाय उचट जाने के बुद्धि में किसी तरह ठहरती ही नहीं।

"प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे।"

इतने में काल भी मान जायें मुँह पर सिकुड़न आने लगी हाड़ों का जोड़-जोड़ कर मांस और चिमड़ी ढीर-ढीर इकट्ठी हो शरीर के समभर मैदान में जगह-जगह टीले से खड़े हो गये।

भूतिलप्ता स्मृतिषु रं स्वातप्रवासिता हिवा "बाढ़ूंपयं हिमन्-प्रप्तम् ?"

अस्तु, यों ही होते-होते साठ सत्तर बरसों पहुँचे दिन करीब आ गये मुँह बाय रह गये।

"राम नाम सत्य है यो बार निग्य है।" 'भूतानि कालः पचतीति

वर्त्ता।" "अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरं । शेषा जीवितु मिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।"

संसार कभी एक-सा न रहा हमारा यह सिद्धान्त अब आया मन में। और अब आगे बढ़िये। पञ्चभूतात्मक पञ्चप्राणवाले जीव जो इस चल और असार संसार में एक से न रहे तो कौन अचरज है अब अटल और सदा के लिये स्थिर बड़े-बड़े पहाड़ सैकड़ों कोस के मैदान और जंगल भी कुछ काल बाद और के और हो जाते हैं।

"पुरा यत्रस्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरिताम्। विपर्यासंयातो घनविरल भावः क्षितिरुहाम्।"

उत्तर राम-चरित में भवभूति कवि लिखते हैं कि दण्डक वन में जो पहिले सोते रहे वे नदियों के प्रवाह के कारण अब पुलिन बन गये घने और विरले जंगलों में उलट-पुलट हो गई जहाँ घना जंगल था वहाँ अब कहीं कहीं दो-एक पेड़ रह गये और जो बिल्कुल पठारी मैदान था वह घने जंगल में बदल गया इत्यादि।

तो निश्चय हुआ कि परिवर्तन जिसके हमारे पुराने बूढ़े अत्यन्त विरुद्ध हैं इस अस्थिर जगत् का एक मुख्य धर्म या गुण है। वहीं नये लोग इस परिवर्तन पर अनमन न होकर खिझते नहीं वरन् इसे तरक्की की एक सीढ़ी मानते हैं। हमारे अभाग से भारत में परिवर्तन को यहाँ तक लोग बुरा समझते हैं कि भिन्न-भिन्न अवस्था किसी दशा में आकर भी परिवर्तन की ओर नहीं मन दिया चाहते यह हमारी परिवर्तन-विमुखता ही का कारण है कि हजार वर्ष से विदेशियों का पदाघात सहकर भी कभी एक क्षण भर के लिये भौंकनी-भाड़ी में स्वत-सम्पादन न हुआ। जैसी उन्नति की तरक्की इस उन्नीसवीं शताब्दी में हमारे देश में हुई है वैसी किसी दूसरे देश में होती तो वह देश भूमण्डल का शिरोमणि हो जाता। परिवर्तन विमुखता के कारण इस समय की विद्यावृद्धि भारत में बबूल की भाँति मालूम होती है और जो जीवन हम यहाँ के लोगों में देखा जाता है उससे

यही निष्कर्ष निकलता है कि इस जीर्ण भारत के भाग्योदय के लिये कई शताब्दी चाहिये। अस्तु, चाहे जो हो जो हम अब हैं दस वर्ष पहले ऐसे न थे कोई दिन के उपरान्त कुछ और हो जायँगे क्योंकि यह संसार कभी एक-सा न रहा।

फरवरी, १८९२

४—ईश्वर भी क्या ही ठठोल है!

लोग कहेंगे इसे कुछ खफ़कान हो गया है इस उन्नीसवीं सदी के फ़ैशन के अनुसार नास्तिक बनने का हौसला चर्राया है जो उस अगम अपार अणोरणीयान् महतो महीयान् की शान में भी ऐसी बेअदबी और ढिठाई के साथ कुफ़ का कलमा बक रहा है। जो हो पर मुझे तो बहुत से अस्त व्यस्त कारखाने देख कुछ ऐसी ही जी में आवती है कि वह या तो कुम्भकरण के जेठा भाई बनने की हवस पुजा रहा है या यदि सब अस्तव्यस्त कारखाने ईश्वरता के विरुद्ध हैं तो वह घनघोर नींद में सो रहा है। या जागता है तो कोई बड़ा ही ठठोल दिल्लगीबाज मसखरा है नहीं तो बेफ़िक्र और लापरवाह होने में तो कोई शक नहीं है।

जिस कसौटी परिभाषा और सूत्र के अनुसार हम लोग आपस में एक दूसरे को जाँचते और परखते हैं वही परिभाषा यदि यहाँ भी लगावें उसे परखें तो उसकी ईश्वरता की सब कलई खुल जाय और दुनिया की हालत देख अचम्भ चित्त में यही समाय कि वह कोई बड़ा ही अनोखा खेलवाड़ी है। सब भाँति स्वतंत्र आप एक बड़ा मनमाना बना बैठा है और इस संसार को एक नाट्यशाला की रङ्गभूमि बनाय जैसा चाहता है वैसा खेल खेला करता है। क्या यह मसखरापन नहीं तो और क्या है कि मनुष्य एक तो निपट परतन्त्र उसमें भी उसका मन ऐसा नाज़ुक और कमज़ोर कर दिया गया पर मुक़ाबिले के लिए लड़ाई उसकी उन दुष्ट अजय विषय वासना के साथ ठान दी गई जो शिकारी जानवरों की तरह सभी इसे अपने कब्ज़े में लाय नष्ट भ्रष्ट किया चाहते हैं और इन लुटेरों से बचने के लिये जो सिपाही विवेक इसके साथ कर दिया गया है वह न जानिये किस कब्ज़े खाने में पड़ा-पड़ा सो रहा है कि प्रतिक्षण मन बेचारे पर क्या-क्या आपदें आती रहती हैं विवेक अलमस्त बेपरवाह को खबर

शक नहीं होती। इसपर तुर्रा यह कि सब तरह कैद में पड़े हमारे मन को कोई इख्तियार हासिल नहीं कि विवेक से कुछ कह सके जिसका चेतना और जग उठना कभी को आकस्मिक घटना कभी को निरन्तर के अभ्यास सत्संग या सद् शिक्षा पर निर्भर है। कभी को ऐसा भी होते देखा गया है कि मन सब ओर से लाचार और शोक-मोह के शिकंजे में अत्यंत ही कसा हुआ होकर विवेक की शरण ढूंढ़ने लगता है।

तात्पर्य यह कि ये जितनी बातें हैं वे सब मनुष्य की शक्ति के बाहर हैं जिस पर उस बड़े नटनागर की कृपा हुई या जिसे उसने चाहा कि अपने जोस-जिसौस से बरी करे, उसके चित्त में विवेकभानु का प्रकाश कर दिया गया नहीं तो निर्विवेकियों को पग-पग में गिरते पड़ते लड़खड़ाते देख आप बैठे-बैठे खिलखिलाया करता है और अपनी ठठोलबाजी को खूब तरक्की देता जाता है। और आगे बढ़िये कितने गरीब मुफलिस कुटुम्बी दाने-दाने को तरसते हुये सबेरे से सांझ तक कड़ी मेहनत के उपरान्त इतना भी नहीं पाते कि कुटुम्ब को मनमानता पाल सकें। नाज भी है तो तेल चुक गया लकड़ी है तो नोन का टोटा है। इधर एक लड़का पड़ा-पड़ा भूख भूख चिल्ला रहा है उधर दूसरा दूध बताशे के लिये मचलाया हुआ है। घट घट की सब बात जाननेवाला विश्वव्यापी विश्वम्भर कहलाकर भी जरा नहीं शरमाता वरन् पड़ा-पड़ा तकता हुआ मनोमन प्रसन्न फूला होता जाता है। उधर एक बड़े सूम के पास एकबारगी मनमाना असंख्य धन कुर्रे दिया गया जिसका खिसकनेवाला भी ठूंठे पेड़ के माफिक "लावल्द मीनार इस्तादहिया"। सिवा उस सूम के दूसरा कोई नहीं है कि इसके मरने के बाद उस धन को काम में लावेगा जब तक जिया अत्यन्त कदर्यता के साथ जिन्दगी काटी किसी को कुछ देना तो सीखा ही नहीं अपने खाने पहनने में भी किफायत करता रहा। यहाँ तक कि तम्बा लगने का समय आ गया प्राण शरीर से प्रयाण किया चाहते हैं पर रुपया जमा करने का ख्याल दूर न हुआ। उस समय भी राम-राम कहने के बदले हाय रुपया —न रुपया यह कर तन त्यागा। यह बैठा-बैठा उस द्रव्य की सब लीला

देख-देख हँसा किया जिसके लिये गरीब कुटुम्बी जन्म भर तरसा किया। वह धन वहाँ दान-भोग के बिना व्यर्थ और निष्फल पड़ा है। क्या इसी को सावधानी और न्याय कहेंगे ?

मसल है "अकरा मारे रोवै न दे"। हाड़ यही मांस यही चाम यही लहू यही। 'तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद हमरे लहू तो तुम्हरे दूध।" तब यह द्विज और सेवा का भेद कैसा ? तुम्हें सेवा किया हमें जिन क्यों कर दिया ? हमने ऐसा क्या अपराध किया कि सैकड़ों वर्ष से भुनगा मात्र कुम्हड़े पसे आते हैं और अब तो यह दशा आ गयी है कि जीवन मात्र हो रहा है तब भी उस ठठोल के मन में जरा दया और इनसाफ नहीं आता। हमारे किसान मर-मर, पच-पच करोड़ों मन गेहूँ पैदा करें। वह यदि सब का सब हमारे काम में आवै तो रुपये न धूके पर गेहूँ लत में रहता है तभी रैलीबदर के फरिश्ते बीच-बीच घूम खेत का खत चुकता कर लेते हैं हम मुँह ताकते रह जाते हैं फसल पर भी बारह सेर तेरह सेर से आगे नहीं पा सकते। इसी को दया और इन्साफ कहेंगे ? काबुल की पहाड़ी धरती में मेवा पैदा कर देना और ब्रज की उर्वरा भूमि में कटीली करील का जन्म। पढ़े-लिखे विद्वानों को निर्धन सूम निर्विवेकी को धनीपात्र गुलाब के फूल में कांटा—सुधाम सुयोग्य को एक कुकामा गृहिणी—सर्वाङ्ग सुन्दर स्वच्छ हिन्दी को अभागिन—परोसिन की छकम काम और फरेब से भरी उर्दू को पश्चिमोत्तर की अदालत में स्थान-दान—इत्यादि सब उसका ठठोलपन नहीं तो और क्या है ?

जनवरी, १८८१

५—दिलबहलाव के जुदे-जुदे तरीके

जब आदमी को कुछ काम नहीं रहता तो दिल बहलाने को कोई न कोई ऐसा एक काम निकाल लेता है जिसमें समय उसको बोझ न मालूम हो और यह कहने को न रहे कि वक्त काटे नहीं कटता।

इस दिल-बहलाव के जुदे-जुदे तरीके हैं जिनमें थोड़े से यहाँ पर दिखाये जाते हैं—जितने सब काम-काज से छुटकारा पाय दिल बहलाने को बाहर निकलते हैं। सदर बाजार के एक छोर से दूसरे तक दो चक्कर किये कभी इस कोठे पर ताका कभी उस अटारी पर इशारेबाजी हुई दिल बहल गया घर लौट आये। जितनों का दिल-बहलाव हुक्केबाजी है सब काम से फरागत पाय किसी बैठक में आ बैठे हाहा-ठीठी करते जाते हैं और चिलिम पर चिलिम उड़ाते जाते हैं—हाहा-ठीठी बोल-चक्कड़ का मौका न मिला तो बे-जड़ बे-बुनियाद की-वाहियात कोई दास्तान छेड़ बैठे, घण्टों तक उसी में समय बिताया घर की राह ली दिल बहल गया। कितने गये आये हैं रास्ते में कोई दोस्त मिल गये दो-दो कच्ची-पक्की औंधी-सीधी इन्होंने उसे कह सुनाया उसने इन्हें कहा अपनी-अपनी राह ली सब थकावट दूर हो गई मन बहल गया। कर्कशा-अपढ़ स्त्रियों का दिल-बहलाव लड़ाई है। घर-गृहस्थी के सब काम पिसौनी-कुटौनी से छुट्टी पाय जब तक दौव न फिर लें और आपस में झोंटी-झोंटा न कर लें तब तक कभी न अघायें जी ऊबता रहे चित्त में उदासी छाये रहे मानों उस दिन उन्हें उपवास हुआ। चुगल चबाई ऐसी फूलों का दिल-बहलाव निन्दा और चवाव है। दो-चार पुराने समय के खबीस इकट्ठे हो गये। भिन्न-भिन्न पूछते जाते हैं और सौ वर्ष का पुराना कोई जिकिर छेड़ बैठे। बहुधा जात बिरादरी के सम्बन्ध की कोई बात अवश्य होगी नाक चढ़ाय चढ़ाय मुँह बनाए-बनाए किसी भले मानुष के गुण में दोष उद्भावन करते ही चार कच्ची-पक्की कह

मुफ मिला मन बहल गया। कोई-कोई ऐसे मनहूस भी हैं कि फुरसत के वक्त किसी अँधेरी कोठरी में हाथ पर हाथ रक्खे पहरों तक चुपचाप बैठे रहने ही से दिलबहलाव हो जाता है। बाज-बाज नौसिखिये नई रोशनी वाले जिनका किया धरा आज तक कुछ नहीं हुआ मुल्क की तरक्की के लक्ष्य में आय आज इस सभा में जाय हुल्लड़ मचाया कल उस सभा में जा टाँय-टाँय कर आये दिल-बहलाव हो गया। इन्हीं में कोई-कोई गाल-गप्प गुल्पंटास किसी सभा या समाज के सेक्रेटरी या खजानची बन बैठ और ढेरों रुपया वसूल कर डकारने लगे। मांजों की मजल सवारी की सवारी तमाशा साथ आमदनी की आमदनी दिलबहलाव मुफ्त में। सच पूछो तो इनका दिलबहलाव सब से अच्छा हमें ऐसा दिलबहलाव मिलता तो सिवाय दिल बहलाने के कोई काम करने के ठौर न पाते। अस्तु हमारा समाज अथ हमारे लोगों की तबियत की भुलावट जिनके बीच तरहे-ऐसे उमदा से उमदा दिल बहलाव—मौजूद हैं। इसी दिल बहलाव का एक क्रम नीचे के श्लोक में दिया गया है—

"काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।"

सच है विद्यारसिक पढ़े-लिखे विद्वानों का मन अपढ़ साधारण लोगों से जैसा और सब बातों में निराला है वैसा ही दिलबहलाव भी अनोखे ढंग का होना ही चाहिये। सामान्य मनुष्यों का दिलबहलाव विषयवासना का एक अंग रहता है यही विद्वानों का दिलबहलाव विद्या-सम्बन्धी बुद्धि का बढ़ाने वाला और शुद्ध सात्विक ढंग का होता है। इसी से ऊपर कहे श्लोक में लिखा गया है कि बुद्धिमानों का काल काव्यशास्त्र के पढ़ने पढ़ाने के आनन्द में बीतता है मूर्खों का समय दुर्व्यसन और सोने में नष्ट होता है। अति दुरूह कठिन विषय जिसमें मस्तिष्क को विशेष परिश्रम पड़ता है निरन्तर तक उसमें अभ्यास के उपरान्त बहुधा जब तबियत ऊब जाए से उचट जाती है तब ऐसे विषय जिसमें बुद्धि को अधिक परिश्रम

नहीं है और सुकुमार कोमल बुद्धि वालों के पढ़ने के योग्य है जैसा काव्य नाटक उपन्यास नावेल्स किस्से-कहानी इतिहास भूगोल इत्यादि के पढ़ने से देर तक दिमाग को काम में लाने से जो उस पर बोझा आ जाता है वह हल्का होकर बोधगम्य उस दुरूह विषय की ओर बैठता है। नैयायिक वैयाकरण और गणितज्ञ "मैथिमैटिशियन" का दिलबहलाव यहाँ बड़ी जागदीशी और दीक्षित की फक्किकाओं के हल करने से जैसा होता है वैसा किसी दूसरी बात से नहीं होता। कहावत चल पड़ी है—वैयाकरण अर्द्ध मात्रा के लाघव में पुत्र-जन्म के आनन्द का उत्सव मानते हैं।

"अर्द्धमात्रालाघवेन वैयाकरणाः पुत्रोत्सवं मन्यन्ते"

इसके यही प्रयोजन है कि जिस विषय का मनन करो वह मन में बैठ जाय तो मन प्रसन्न हो जाता है और इतनी खुशी होती है मानों लड़का पैदा हुआ। इसी तरह "युक्लिड" बीजगणित का कोई दुरूह हिसाब के सवाल हो जाने पर गणित करने वाले के चित्त में जो सुख होता है उसके आगे विषयवासना के निकृष्ट कोटि वाले आमोद-प्रमोद किस हकीकत में हैं। इसी तरह सभ्य समाज का भी दिलबहलाव इधर-उधर बेकाम घूमने के बदले अपने समान उदार प्रकृति वालों के साथ संलाप है जिनकी आपस की बात-चीत उत्तम उपदेश से पूर्ण रहती है इसी से किसी ने कहा है—

सदा सन्तोऽभिगन्तव्या यद्यप्युपदिशन्ति नो।
या हि स्वैरकथास्तेषामुपदेशा भवन्ति ताः॥

सुजन्य सत्पुरुष यद्यपि कुछ उपदेश न करें तो भी उनके पास जाना उत्तम है जो आपस की उनकी बातचीत है वही उपदेश होती है। कृपणता की मूर्ति हमारे सेठ जी का दिलबहलाव रुपये की थैलिया है दुन्नी-दुर्ये के मुस्ठान से छुट्टी पाय जब कुछ काम न रहा थैलिया खोल बैठे, दो-चार हजार रुपया गिन डाला दिल बहल गया। शराबी तथा जुआरी का दिल-बहलाव उत्तम है। पक्के जुआरी को जिस दिन हजार-पाँच-सौ जीत हार न हो तो भी उकता रहता है, जिनके जीवन का सर्वस्व द्यूत है।

हर्म्यं सर्म्यं धूतेर्नैव दारा मित्रं धूतेर्नैव।
हर्तं भुक्तं धूतेनैव सर्वं नष्टं धूतेनैव॥

जुआरी जुआ को भी सिंहासन का राज्य मानता है—

"न गणयति पराभवं कुलीनत् हरति ददाति च नित्यमर्थजातम् ।
नृपतिरिव निकाममायदर्शी विभवता समुपास्यते जनेन॥"

ऐसा ही शराबी जब तक पीते-पीते बेहोश हो नालियों में न गिरे उसका दिल न बहलेगा। हमारा दिल-बहलाव उमदे से उमदा चटका रसीला मजमून है जिस दिन कोई नई बात सूझ गई दस मिनिट में वर्कें का वर्क लिख डाला उस दिन चित्त बड़ा प्रसन्न रहा नहीं बैठे-बैठे सिर पर हाथ रक्खे पहरों सोचते रहते हैं मन को उद्विग्न किये चित्त निरस्त हो बैठते हैं। ऐसा ही अपने रसिक ग्राहकों को भी एक दिन के लिये दिलबहलाव हम होते हैं जिस दिन हम उनसे जा मिलते हैं वे अपना सुदिन मानते होंगे। इत्यादि इत्यादि दिलबहलाव के जुदे-जुदे तरीके यहाँ दिखाये गये।

जनवरी १८८६

६—उपदेशों की अलग-अलग बानगी

जहाँ गृहस्थ के लिये सबेरे से उठ साँझ लौं अनेक-अनेक चिन्ता की झंझट बाजनवीर रहती हैं और नोन-तेल-लकड़ी की फिकिर एक दम भ फुरसत नहीं लेने देती वहाँ लोगों का तरह-तरह का उपदेश भी जी भ डाँवाडोल किये रहता है जिसका-जिसका उपदेश सुनें किसे सच्चा मा किसे झूठ। कुछ लोग उपदेश देते हैं—बच्चा दुनियाँ के बखेड़ों में म पड़ो विद्या-बुद्धि दोनों सन्मार्ग की लुटेरी हैं तुम अपने कोने में बैठ पोथि भजन किया करो जो कुछ कमा लाओ रूखी-सूखी चाहे मुँह ताकते रह जा मोटा-झोटा खा-पी जो कुछ बचे उसे ठाकुर जी को अर्पण कर दिया कर सन्तों के सत्कार से जो बचे उसे गुरु महाराज की भेंट कर दिया करो थोड़े से अंगरेजी पढ़े विधर्मी लोग उठ खड़े हुये हैं जिन्होंने अपना न संशोधक और रिफार्मर रख लिया है वे भाँति भाँति की कमेटियाँ ब.. सभायें कर तुम्हें उसमें बुलावेंगे और सब तरह पर तुम्हें बहकाया देंगे पर तुम चौकस रहना उनकी ओर न झुक पड़ना नहीं तो बच्चा नरक की आग में पड़े-पड़े सड़ोगे कभी उबार न पाओगे।

पादरी साहब बाजार में खड़े उपदेश देते हैं—प्रभु ईसा की शरण गहो वह तुम सबों के पाप की गठरी का कुम्भार बन सूली पर चढ़ गया न कुछ दान या काम न तपस्या की जरूरत न बड़े-बड़े संयम-नियम से शरीर सुखाने की आवश्यकता है जमकर से जमकर शराब पिया करो देह को आराम और सुख पहुँचाने में कहीं भी कसर न होने पावे। सिर्फ ईसा पर ईमान लाओ मुक्ति तुम्हारी दासी और किंकरी होगी बस और चाहिये क्या— "मुक्तिस्तस्य मुक्तिस्तस्य करस्थ एव"।

अस्सी बरस की डोकरी बम्मन बुढ़ियायें उपदेश देती हैं—बेटा जब तुम सयाने भये घर दुआर की फिकिर रखा करो, दुलहिनिया की

मखिया दूह मै है, मलसिया का ब्याह बिमराम है सदा फक्कड़ बने रहने से काम न चलिहै। कुपूत जावें उपत सपूत जावें भगत अथवान् देखाई यार निया में तुम मस्ती फेरा के होड़ हो। मन-मन घट-घट करते घर में बीच न रक्खा करो पानी भरी खाल कौन जाने आज का है कल का हो। ऐसी चाल चलो देह में जग में हँसी न हो।

पर मामी समझाती है—हम सौ-सौ बार कहा खास मन की बात हमसे सही नहीं जाती तुम बाबू बैठे रहो, महीने में जितना कमाते हो नाई-नमान के खिलाने पिलाने में सब का सब उठ जाता है उसी को जमा करते रहो तो गहनों से नख से सिर तक हम भर जाय। अन्त में ये पाई आग तुम्हारे कोई काम न आवेंगे। पास पूँजी बनी रहेगी तो सब भाई भतीजे बनेंगे नहीं तो कौड़ी के तीन-तीन होगे तुम जानत नहीं। न बाप न भैया सब से बड़ा रुपैया को पकड़े को तुम ठिठोली कर रहे हो अभी तुम्हें समझ नहीं पड़ता पीछे पछताओगे।

यार दोस्त उपदेश देत हैं—वाह! हो! दुनिया के सुख और आराम से मुँह मोड़ चरित्र सोचन के लिये जी दिये डालत हो जिसमें अपना जी सो करो जवानी,जी उमर ताने तनने की होती है तुम अभी ही से बुड्ढों की तरह मुमुरखी और बुढ़वारी का जामा ओढ़ बैठ रहे क्यों? घर में पड़ पड़े सड़ा करते हो शाम को जरा बाजार की हवा खा आया करो थोड़ी देर के लिए यार दोस्तों से भी मिल जुला करो या एक गजल पढ़ो तो

"आजकल की खूब आमें अब तो आराम से गुजरती है"

"का है मधुसूदन कहो वा दामोदर नाथ।
या की राम प्रणाम कर भरदे मदिरा साथ"
"भरा है जाम में हम को तो कुछ कलाम नहीं
शराब यार पिलावें तो कुछ हराम नहीं।"

इत्यादि सैकड़ों पद्यावाक्य प्रमाण के लिये कहो तब सोंप दें, जिस—

घर को तुम्हारे पर दादा भी आकर तोड़ा चाहें तो न टूटैगी। तब तुम्हें मामा-मीजा करने की जरूरत अब क्या है जब तक बेतकल्लुफी न हुई तब तक दोस्ती क्या!

बेगम साहबा कहती है—खुदा कसम मेरी भी चाहना है तुम्हें आँख का ओट न करूँ जब तक नहीं देखती जी उकताया करता है। हमसे क्या कुसूर बन पड़ा जो आप कई दिनों से नहीं आये? यह निठुराई क्यों सीखा? है मेरे कन्हैया मैं तो अपना तन प्राण जीवन सब तुम्हें सौंप चुकी तुम्हारे अधीन चतुर चूड़ामणि तुम खुद सयाने हो मैं तुम्हें क्या सिखाऊँ? उस दिन आपने पाँच सौ रुपये दिये थे पर अम्मा कहती हैं उतने में जानवर तैयार न होगी (हँसकर) अम्मा नाहक उकताती है। आपकी मुहब्बत का ख्याल किया जाय तो पाँच सौ क्या पाँच हजार कुछ बड़ी बात नहीं है। बहती गंगा न अब न हाथ धोओगे तो दूसरा वक्त कौन सा होगा।

सनातनधर्म वाले उपदेश देते हैं—'बाप दादा की लीक पीटते जाओ यही सम्पूर्ण वेदशास्त्र का निचोड़ है। हिन्दू धर्म का सारांश है।' हमारा उपदेश है बाप-दादा की लीक पीटने के बराबर कोई दूसरा पाप ही नहीं है, बाप-दादाओं की लकीर पर तुम्हें घिन न हुई तो तुम्हारे पढ़ने लिखने पर लानत है। उनकी लीक का मेटना ही महापुण्य है, सुकृती है, धर्म है, हिन्दुस्तान को सभ्यता के शिखर पर रख देने का सुगम उपाय है। यह सनातनधर्म नहीं है वरन् प्रचलित कुरीतियों को भला काम समझ उसको जारी रखने के लिये टट्टी की आड़ में शिकार है। ब्राह्मणों के लिये छोटे बड़े सबों को अपने चंगुल में रखने का सहज हटका है। हिन्दूजाति के अधिक पतित होते जाने का खुला द्वार है। अफसोस बदमाशों ने जिसने समझा कि यह कौम को कमजोर और बिगाड़ने का बड़ा अच्छा जरिया है उन्हीं-उन्हीं बातों को चुन-चुन कर सनातनधर्म में रख दिया। अब इन देशों के लोग "रिफार्म" सुधार और संशोधन की दृष्टि से उन्हें श्रुति स्मृति से दिखाते हैं तो यही पता नहीं लगता कि किस मूल पर यह कुरीति और दुर्नीति चल पड़ी वरन् श्रुति और शास्त्रों में जिसे मना किया पाप और

बुरा कहा उसी को सनातन का सियापा गाने वाले बदमाशों ने विहित पुण्य और भलाई का काम कहा। इन घिनौने सनातन से दूर हटना ही अब कल्याण का मार्ग है हमारे इस अन्तिम उपदेश पर आरूढ़ होने से दासभाव की बेड़ी से छूट बहुत जल्द प्रभुता पाने के अधिकारी हो जायेंगे हाथ कंगन को आरसी क्या, जिसका मन हो आजमा के देख ले इत्यादि। हमने बहुत तरह के उपदेश आपको कह सुनाया अब उस पर चलना और उन्हें मानना आपके अधीन है।

यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं न करणीयम्।

न जानिये किस मौढ़िल अकिल वाले अहमक ने इस कहावत को प्रचलित कर रक्खा है। हम कहते हैं यदि शुद्ध है और लोक विरुद्ध है तो वह अवश्य करणीय है। जब हमें निश्चय हो गया यह शुद्ध है शास्त्र और अकिल दोनों इसे कबूल करती हैं तब उसके न करने में आगा-पीछा की जरूरत क्या थी? जैसे १५ वर्ष की औरत २५ वर्ष के साथ ब्याही जाय तो कौन सी हानि है! शास्त्र भी इसमें सहमत है और अकिल कबूल करती है कि १५ वर्ष में स्त्री अपनी पूरी उमर को पहुँच जायगी पुरुष भी तब तक [illegible] ठीक पढ़-लिख तैयार हो जायगा। माँ-बाप को बोझ न होकर अपना निर्वाह अपने आप करने लायक हो गया तब सुख से जीवन पार करेगा और पुष्ट रज-वीर्य के सन्तान पैदा हो देश के सौभाग्य के हेतु होवें। पर यह लोक विरुद्ध होता है संसार में क्या मुँह दिखावें कि इतने बड़े-बड़े लड़की लड़के हो गये कौन-सी कला है जो ब्याह नहीं होता। मालूम होता है जाति में हेठे हैं। इस लोक-निन्दा की डर से जन्म-पर्यन्त सब तरह का क्लेश उठाते हैं अपने औलाद की तरक्की में हर तरह बाधा पहुँचाते हैं किन्तु यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं वाली कहावत को चरितार्थ किये जाते हैं।

शास्त्र में लिखा है दान पात्र को देना चाहिए। अकिल भी मानती है कि हमारे यहाँ जो बड़े-बड़े दान किए दिये हैं सो इसीलिये कि वे दान

योग्यता और विद्या के हिसाब से किये जायँ तो संस्कृत का अवश्य पठन-पाठन बना रहेगा लोग शास्त्र के अभ्यास में परिश्रम करते रहेंगे और झूसटों के मुकाबिले उनकी विशेष कदर रहेगी सो अब इस कहावत के अनुसार ऐसा करने से लोक विरुद्ध होता है जिसको सदा से मानते आये हैं उन्हें कैसे न मानें चाहे वैसा अनाचार और अपाहिज हो बड़े से बड़ा दान पाने का वही अधिकारी है जिसे बाप-दादा लीक पीटते आये हैं। इस तरह के दो उदाहरण हमने दिये पर इस कहावत के अनेक उदाहरण आपको मिल सकते हैं। तात्पर्य यह है हमारी तरक्की के अनेक विघातकों में ऊपर की यह कहावत भी एक महाविघातक है।

सितम्बर, १८९४

७—विश्वास

विश्वास के वृक्ष का अंकुर सरस और विमल चित्त के आलवाल में जमता है और धर्मानुरागरूप जल से नित्य हरा-भरा और प्रफुल्लित हो यह लोक और परलोक सम्बन्धी मीठे और स्वादिष्ट फलों से भव संसार में मनुष्य के जीवन को सार्थक करता है। सुमार्ग पर चलने कुमार्ग से बचने और जगत् के प्रबन्ध की उत्तमता के लिये विश्वास एक मात्र सहारा है। अदृष्ट और परलोक में विश्वास से जो कुछ भलाई होती है उसकी व्यवस्था कौन जाने बिन देखी बात का ठीका कौन ले और कौन लोगों के साथ सिर पचावे।

प्रायः दार्शनिक और कुतर्की विश्वास की प्रणाली को एक खेल तमाशा समझते हैं और विश्वास करनेवालों पर हँसते हैं पर जिन सत्पुरुषों की अकुटिल सरल बुद्धि में पूर्वापर का विचार और स्वच्छरीति पर संसार-चक्र की धुरी के चलन का रवैया है वे विश्वास को तुच्छ कभी न समझेंगे। चाहे दार्शनिक ज्ञान के कारण विश्वास पर विशेष श्रद्धा न रखते हों पर जगत् के प्रबन्ध की रक्षा के लिये वे यही कहेंगे कि जहाँ तक प्रजा का विश्वास धर्मपथ और उपासना-काण्ड में दृढ़ रहे वहाँ तक अच्छा। हजारों लाखों ऐसे मनुष्य हैं खासकर हिन्दुस्तान में जो सर्वथा विद्याशून्य हैं पर धर्म और ईश्वर तथा परलोक में विश्वास के कारण अनेक पापकर्म से बचते हैं और आसन्न दशा या अज्ञान अवस्था में किसी पापाचरण पर ऐसा कुछ पश्चात्ताप और अफसोस करते हैं। इसीलिये धर्म शास्त्र प्रणेता या नीतिप्रवर्तकों ने विश्वास की जड़ को और पुष्ट किया है [illegible] गीता में तो यहाँ तक लिखा है कि—

"योगयुक्तः सर्वकर्माणि विश्वासतः समाचरेत्।
ज्ञानमपि हि मेधावी श्रद्धालोक आचरेत्॥"

रूखी तबियत वाले जिनमें प्रेम और भक्ति का कहीं स्पर्श भी नहीं है, उन्हें चिरकाल का प्रचलित वर्तमान हिन्दू-धर्म सब ओर से ढंग ही ढंग जँचता है। कदाचित् ऐसा हो भी क्योंकि मजहब के साथ मक्कारी में अपना घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ रक्खा है। पर धर्म संबंधी सब ढंग ही ढंग है, हम ऐसा कभी न मानेंगे बल्कि उन्हीं उपासकों का थोड़ा दोष है जिनमें भक्ति का किंचित् भी लगाव नहीं है।

कृष्ण चैतन्य महाप्रभु, नानक और कबीर आदि पुराने संशोधकों और इस समय के संशोधकों में यही बड़ा अन्तर आ गया है। पुराने संशोधक भक्ति श्रद्धा प्रेम और विश्वास से पूर्ण थे जो कुछ उन्होंने किया उसमें पूर्णतया कृतकार्य हुए। कृष्ण चैतन्य ने संपूर्ण बङ्गाल को अपना अनुगामी कर डाला, गुरु नानक देव ने पञ्जाब भर को अपना चेला मूड़ लिया, वल्लभाचार्य ने गुजरात को अपना कर डाला, रामानुज स्वामी ने मन्द्राज में अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर दिखाया। इन दिनों संशोधक गला फाड़-फाड़ गली-गली चिल्लाते फिरते हैं पर उनके कहने का किसी पर कुछ असर नहीं होता इसलिये कि वे रूखे वैज्ञानिक बन भक्ति श्रद्धा और सच्चे विश्वास को अपने में नहीं आने देते। अन्तर्यामी परमात्मा सो सबों की चित्तवृत्ति पहिचानता है इसलिये वह उनको अपने उद्यम में यथोचित कृतकार्य नहीं करता।

इन दिनों झूठा विश्वास False belief चल पड़ा है सभ्य समाज वाले अपढ़ मूर्खों को किसी धर्म-सम्बन्धी कार्य में लगे हुये देख उनके विश्वास को फाल्स बिलीफ कह उन्हें हँसते हैं पर हम कहते हैं, विश्वास ऐसी चीज है कि वह झूठा हो ही नहीं सकता। जिन्हें विश्वास हुई नहीं उनसे उनका झूठा विश्वास ही भला बल्कि यों कहिये जिस पर जिसका विश्वास जम गया उसको वह विश्वास ही तदाकार हो भावनानुकूल फल देता है। इसी से कहा है "विश्वासः फलदायकः"। जो कुछ हो अब इस समय हम देखते हैं तो विश्वास की जड़ बहुत कट रही है जिसका परिणाम सोचते हैं तो बड़ा भयंकर जान पड़ता है। आस्तिक्य बुद्धि ईश्वर में प्रीति

यह सब बातें बड़े कल्याण की हैं, न जानिये क्यों हमारे गुरुजनों को इधर से अरुचि है। बड़े लोग हैं कुछ समझ होंगे। हम अपनी छोटी अल्प बुद्धि को कहाँ तक पछतायें जो बेठऊ तरबूज से उनके भारी और पैने दिमाग के साथ नहीं मिल सकती।

जनवरी १८९६

बहुत कम पाये जाते हैं। ऐसे लोगों से समाज का काम तो भरपूर निक
सकता है परन्तु सत्य का पोषण नहीं हो सकता इसलिये कि उनका विश्वा
भी गुस्से की रंगत पकड़ लेता है।

एक प्रकार के पुरुष और भी हैं जो सच्ची नीयत से विश्वास के पोष
में तत्पर हैं और सत्य के अन्वेषण में भी उद्यत हैं किन्तु बुद्धि-वैभव में इत
पूर्ण नहीं हैं कि तर्क के द्वारा अपने विश्वास को सत्य के पास तक पहुँचा सकें
तर्क तो करते हैं किन्तु उनका तर्क एकदेशीय है इसलिये सत्य का हो
पूरा निश्चय नहीं कर सकते और बिना पूरा निश्चय के जो विश्वास
वह कच्चा विश्वास है, इत्यादि। कई प्रकार के तर्क करनेवाले नहीं विश
पाये गये। पर सच तो यों है कि विश्वास और तर्क दोनों एक दूसरे
इतना विरुद्ध है कि तर्क विश्वास के लिये कुल्हाड़ा है। विश्वास को ज
तक चित्त में स्थान न दोगे तर्क की श्रृंखला कभी टूटे होगी नहीं।

जनवरी, १८

९—नीयत

नीयत अजीब चीज है और आदमियों के तमाम कामों में अच्छा या बुरा करार दिये जाने की एक ही कसौटी है। कोई काम जिसका परिणाम बुरा से बुरा है बुरा नहीं कहा जायगा अगर उस काम को करने वाले की बुरी नीयत से नहीं किया गया तो उसका यश करनेवाले को नहीं मिल सकता। जितने काम संसार में किये जाते हैं जानबूझकर किये गये हों या भूल से किये गये हों या उस हालत में किये गये हों जब कि आदमी अपने होश या काबू में नहीं है सब अवस्था में गुण या दोष की जिम्मेदारी की नियामक नीयत ही है। जितना से जितना काम बन पड़ा हो पर नीयत उसके करने की न पाई जाती हो तो उस काम के करने वाले को दोषी न कहेंगे। इसी तरह पर भले काम का करने वाला भी नीयत ही से बुरा कहा जा सकता है। इसी लिये सीधे सच्चे मनुष्य का काम सदा अच्छा और प्रशंसा के लायक होता है। अच्छे इरादे अच्छी नीयत से जो उसने किया है तो उसको असल काम में सरगर्मी भी भरपूर होने देती गई है। इसी तरह कुटिल मनुष्य जिसका काम कुटिल इरादे से किया गया है उसमें कामयाबी बहुत कम होने देती जमी है। इस कारण नीयत मनुष्य के मनोगत तत्त्व-आत्म पर सुशोभित उसके बाहरी कामों में जगमगाती ज्योति के साथ प्रकाशमान रहती है। नीयत चमकती है। नीयत की बरकत—सत्य की सीधी सरल फिर मिलेगी आप—व्यापि कहावतों से मालूम होता है। ये उन मगावबुद्धि गम्भीराशय लोगों के सिद्धांत हैं जिन्होंने संसार में मनुष्य के चित्तों को खूब परखा या समझा है। लाखों का काम चल रहा था। दैवदुर्विपाक से कोई ऐसी दुर्घटना आ पड़ी कि सब छिन्नभिन्न हो गया कहीं कोई कारण देनेवाला न रहा। व्यौपारियों में एक पैसे की साख भी न रही कुछ दिन में धुंआ के समान सब ओर से या घेरा जिसका कारण था सब छिन्नभिन्न

१०—जबान

कहने को मनुष्य के शरीर में ५ इन्द्रियां हैं और यह पुतला उन्हीं ५ कर्मेन्द्रियों का बना है किन्तु उन-उन इन्द्रियों का प्राबल्य केवल अपने विषय में है अपना विषय छोड़ दूसरे के विषय में ये कुछ अधिकार नहीं रखती. जैसे कर्णेन्द्रिय का अधिकार शब्द पर है तो कान को रूप से जो नेत्र का विषय है कुछ सरोकार नहीं है। ऐसे ही नेत्र को त्वगिन्द्रिय से जिसका अधिकार स्पर्श पर है कुछ सरोकार नहीं है। कड़ी वस्तु देख नेत्र को न कुछ दुख मिलता है न मुलायम को देख कुछ सुख। नासिका का विषय सुगन्धि दुर्गन्धि है शेष चार-शब्द स्पर्श रूप रस से नासिका को कोई प्रयोजन नहीं है।

पर जबान सब इन्द्रियों में इतनी प्रबल है कि यह जायका लेने के समय सिवाय रस के जो इसका प्रधान विषय है शब्द स्पर्श रूप गन्ध सबों को अपने साथ समेटती है। भोजन के समय जरा भी दुर्गन्धि हो या खाना जिसे हम खा रहे हैं भन्नाता हो कभी न खाया जायगा। खाने की कौन कहे मिचलाई आने लगेगी जो पेट में है वह भी बाहर निकल पड़ेगा। उनकी तो बात ही निराली है जिन्हें दुर्गन्धि ही सुगन्धित है। हमारे साहबान अंगरेजों के साफ और सुथरे दस्तरखान पर चमाचम रकाबियों में जब तक महीनों की सड़ी मांस या मछली और पनीर न रक्खी हो तब तक लज्जत और जायका नहीं जिसकी भभक पास दूर ही से नाक सड़ती है। जितनी ही जियादह भभक हो उतना ही जियादह जायका? किन्तु सफाई को इतना अधिक अधिकार दिया गया है कि इसीलिये हिन्दुस्तानी भाई भी उसी सफाई पर मोहित हो साहबों की जूठी रकाबियों पर मक्खी सा जा टूटते हैं। इलायची केवड़ा केसर आदि सुगन्धित द्रव्य इसी प्रयोजन से भोजन के पदार्थों में मिलाये जाते हैं जिससे उसमें सुगन्धि आ

साफ और सुसज्जित भोजन मामूली भोजन से ज्यादा अधिक खाया जाता है।

अब दूसरी बात नेत्र को जिह्वा से क्या सरोकार है। साफ और स्वच्छ पदार्थ देखते ही जीभ से पानी टपकने लगता है, स्वादिष्ट भोजन कलौंछ और मैला हो तो भाव दुष्ट होने से चित्त उस पर इतना नहीं लहालोट होता जितने साफ और स्वच्छ पदार्थ पर जो मन को भावता हो। इसी तरह स्पर्श-सुख का सूक्ष्म अनुभव जैसा जीभ कर सकती है वैसा शरीर के दूसरे हिस्से नहीं कर सकते। इसी से जीभ का रसना यह नाम सब भाँति सार्थक है। ईश्वर न करें रसना किसी की रस के अनुभव में तेज और चोखी हो। चटोरी जीभ लाखों रुपया चाट बैठती है और तृप्ति उसको नहीं बुझती। न जाने कितने लोग केवल चटोरी जीभ के कारण साख का घर खाक में मिलाय सब चाट बैठे। जुआ शराब ऐयाशी चटोरापन इन चारों एवों में किसी एक का हो जाना बरबादी के छोर तक पहुँचाने के लिये काफी है। दैव के कोप से जिनमें चारों हैं उनकी खूबी और सिफारिश का क्या कहना है।

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितेन्द्रियकः पुमान्।
न जयेद्रसनं यावत् जितं सर्वं जिते रसे॥

तब तक मनुष्य जितेन्द्रिय नहीं हो सकता चाहे और सब इन्द्रियों को वश कर भी लिया हो जब तक रसना को अपने वश में नहीं किया। एक जिह्वा को काबू में रखकर बाकी और इन्द्रियाँ काबू में आ सकती हैं। और भी—

जिह्वयातिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः।
मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा॥

चटोरी जीभ के कारण मनुष्य मूढ़ बन मछली के समान जिह्वा के वश ...ह नष्ट हो जाता है।

जितने खाद्य पदार्थ हैं उनका स्वाद या जायका जिह्वा के अपकार

से क्षण भर के संयोग का है, गले के नीचे उतरा कि स्वादिष्ट और बेस्वा भोजन दोनों एक से हैं।

> आस्वादस्य हि सर्वस्य जिह्वाग्रे तत्वसंगम।
> कण्ठमार्गमतीतं च सर्वं तत्सम समम्।।

केवल स्वाद चखना जीभ का फायदा हो सो नहीं वरन् शरीर के और-और अंग की अपेक्षा इसके गुण या दोष भी सबसे अधिक प्रबल हैं बड़े से बड़ा फायदा और बड़े से बड़ा नुकसान दोनों इसके द्वारा ही सम है। गाँठ का एक पैसा भी बिना गँवाये मीठी जबान लाखों का फायद सहज में कर सकती है—

> "कागा का को धन हरै कोयल का को देय।
> मीठो वचन सुनाय के जग अपनो कर लेय॥"

नुकसान भी आदमी कड़ुई या बदजबानी से इतना उठाता है कि स समता सिफ्तों के होते भी लोग कटुभाषी या बदजबान के पास जाते हिचक हैं बल्कि कुत्ता-सा वह सबों से भरभराया जाता है। जबान को समस सभ्यता और शाइस्तगी का सारांश कहना अनुचित नहीं है। अब तक कुछ तरक्की संसार में हुई है उसका द्वार जबान ही है। इन्सान और हैवा में यही अन्तर है कि जानवर हम लोगों की तरह अपने ख्याल जबान कहकर नहीं प्रगट कर सकते नहीं तो और सब इन्द्रियों के लालन-पाल में आहार निद्रा भय मैथुन आदि के द्वारा पशु और मनुष्य की समता हो में कौन-सा अन्तर बच रहा। लिख कर अक्षरबद्ध रख छोड़ने का क्रम बहुत दिनों के बाद निकला। प्रारम्भ में जबान से कहना और कान सुन उसे याद रखना ही बहुत दिनों तक जारी रहा। ज्यों-ज्यों लोग अधि सभ्य होते गये हिन्दी की चिन्दी निकालने लगे। तब वे ही सुन जो जबा से कहे गये उनपर भाष्य शरह और कमेंटरी होती गई और उन्हें सुरक्षित हो के कारण स्मरण-शक्ति के बाहर समझ लोगों ने लिपि के बल पर अक्ष निकाले और लिखकर रख छोड़ने लगे।

तात्पर्य यह कि यावत् शिक्षा और ज्ञान पहले जिह्वा से कह कर प्रकट न किये गये होते तो केवल लेख-शक्ति से कुछ न होता न हमारी सभ्यता इस ओर तक पहुँचती। जबान को दबाना क्रोध को दबा रखने का एक ही उपाय है। कई बार की आजमाई हुई बात है कि कैसा ही क्रोध आया हो चिल्लाने के एवज धीरे-धीरे बोलो क्रोध कम-कम आप ही शान्त हो जायगा। क्रोध समाज को यहाँ तक नालायक हुई सो दिखला चुके।

अब धर्म-सम्बन्ध में जिह्वा पर लगाम रखने की जितनी आवश्यकता है सो दिखलाते हैं। सच तो यों है कि जीभ पर बिना कोड़ा रक्खे वशिष्ठों को धर्मधुरन्धर बनने का दावा करना सर्वथा व्यर्थ है। वह अवश्य धोखे में पड़ा है जो अपने को वशिष्ठ तो मानता है पर जीभ को अपने काबू में नहीं किया। झूठ बोलना झूठी गवाही देना चुगली बरजोरी इत्यादि से बचना ही जीभ पर लगाम नहीं चढ़ावेगा क्योंकि झूठी गवाही चुगली गाली इत्यादि बड़े-बड़े पापों का विषय निराला है। कानूनी चौहद्दी "क्रिमिनल ला" की मद में उसकी गिनती है और सरकार की ओर से उसके लिये दण्ड नियत है। जिस पर जान-बूझकर शामत सवार होगी वही ऐसे अपराधों में अपने को फँसाय जेल और जुरमाने का सजावार बनावेगा।

बल्कि जबान में लगाम से प्रयोजन गप्पी और बाचाल का है जिन्हें अपनी गपाष्टक के समय आगे-पीछे का कुछ खयाल नहीं रहता न अपनी या पराये की हानि-लाभ का। जिनको गप्प हाँकने की आदत हो गई है वे इसे अपने लिये दिल-बहलाव मानते हैं इसमें किसी तरह एब या पाप नहीं समझते और जब उनके गप्प का विषय चुक जाता है, कोई बात नहीं रहती जिस पर वे अपने गप्प को काम में लावें तब वे कुछ ऐसी कल्पना किया करते हैं जिससे दूसरों को बदनाम करें, और उसमें किसी का कुछ कलंक उद्घाटन करें इत्यादि। पर उनसे नहीं रहा जाता कुछ कहना अवश्य—

"अयमपि च वक्तव्यं हास्यरसा हरीश्री।"

मुख में जीभ ईश्वर ने दी है तो कुछ कहना चाहिये। हाँ सुनिये तो हाल की हुई—ऐसे लोग जिन्हें बहुत बकने का अभ्यास हो गया है अपनी बकवाद की झोंक में वह बात कह डालते हैं जो न कहना चाहिए था जिसे कहकर वे पीछे पछताते हैं। यहाँ तक बेअख्तियार बकवाद उन्हें पसन्द आती है कि जब तक मन मानता बक न लें अघायेंगे नहीं ऐसा स्त्रियों में बहुत एसी होती है कि २४ घण्टे में कम से कम ६ घण्टे गप न मिली उन्हें चैन न पचेगा। बजारों में किस्सेगो इस किस्म के रहते थे कि दिनभर बको बकते रहें उनके किस्से की लर न टूटे। गप्पूखाने में गप्पूबाजों की गप्प मशहूर हुई है। इन बकवादियों की भी कई किस्में हैं। कितने तो ऐसे हैं कि उनकी चाहे कोई सुने या न सुने उनको बक जाने से काम। कितने ऐसे हैं कि उनकी बकबक का किसी ने तिरस्कार किया कि उन्हें जोश आ जाता है बिगाड़ वाले होते हैं। कितने एसे होते हैं कि अपनी बकवाद को रङ्गीन और दिलचस्प व तमाम सुनने वालों को नापसन्दीदा बात यह उसमें कुछ ऐसा ईजाद कर देते हैं कि थोड़ी देर के लिये सबों का ध्यान उस ओर मुखातिब हो जाता है। इसे वे एक हुनर मानते हैं और इस ढङ्ग से बात करते हैं कि उनकी सरासर झूठ बात सब लोग सच मान लेते हैं।

जीभ को न दबाना अनेक बुराई और क्लेश का कारण है। महाभारत ऐसा सर्वनाशी संग्राम इसी जीभ के न दबाने की बदौलत किया गया। द्रौपदी न यदि दुर्योधन को अन्धे के अन्धे होते हैं इस मर्मभेदी वाक्य को कह मर्म आहत न किया होता और दुर्योधन को पाण्डवों से खार न पैदा हुई होती तो परिणाम में १८ अक्षौहिणी सेना भाई को कट मरती जिसका धक्का जो हिन्दुस्तान को लगा बल्कि ऐसा भारी घाव इसके शरीर में हो गया उसकी मरहमपट्टी आज तक न हो सकी। इन्हीं सब कारणों से सिद्ध हुआ मनुष्य अपनी जीभ पर जहाँ तक चौकसी कर सके और उसको दबा सके दबावे। इस पर चौकसी रखने से अनेक भलाइयाँ हैं और स्वच्छन्द कर देने से सब तरह की बुराइयों की सम्भावना है।

जीभ को दबाना और चौकसी रखने से यह प्रयोजन नहीं है कि हम

सर्वथा मूकभाव धारण कर लें किन्तु चुप रहने के भी मौके हैं। विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध या संसार की अनेक ऊँची-नीची बातों के अनुभव में जो अपने से अधिक हैं उनके सामने शालीनता के ख्याल से चुप रहना होता है जिसमें यह कोई न समझे कि यह छोटे मुँह बड़ी बात कह रहा है। बहुत बकने वालों में कितने ऐसे हैं कि घंटों तक बक जाते हैं पर उनके बात करने का खास मतलब क्या था कुछ समझ में नहीं आता। इस तरह पर बात करनेवालों की कई किस्में हम यहाँ पर गिना सकते हैं। एक वे हैं कि हँसते जाते हैं बात करते जाते हैं— 'हम्मूर्ख' 'हमजानते' इत्यादि वाक्य लाते हैं कि बात करने का यह ढंग मूर्खता की पहचान है। एक सगुन तकिया वाले होते हैं। दस वाक्य का एक जुमला होगा तो ५ बार उसमें तकिया कलाम के होंगे। इनमें जिन्हें वाणी की सगुन तकिया पड़ जाती है उनकी चिकनी बात काम का बड़ा असर मालूम होती है। एक बकवादी होते हैं। बात उनके मुख से क्या निकलती मानो गाज गिरा। इन्हीं की आदत होती है कि जहाँ कोई बात बनती हो तो ये वहाँ पहुँच उसे बिगाड़ देने में कसर न करेंगे।

"क्लीव रोगो कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतस्य।"

इनकी वज्र-पाती कटुवाणी इस बात का चिह्न है कि वे नरक भोग कर आये हैं और मर कर फिर नरक में जायेंगे। इसी के विरुद्ध एक ऐसे भी गुणी जन हैं जो अपनी मीठी बाणी से मन मोह लेते हैं। धन्य हैं वे स्वल्पभाषी जन इत्यादि जिह्वा के सम्बन्ध में जो कुछ वक्तव्य था हमने सब कह सुनाया।

जनवरी १८९१

११—उपमा

उपमा एक ऐसा अलंकार है जिसकी उपयोगिता न केवल पढ़े-लिखे लोगों को होती है, वरन् हमारी नित्य की साधारण बातचीत में भी बिना उपमा के काम नहीं चलता। अल्पयोगी के लोग जिन्हें हम विदग्ध नागरिक या तदविपरीत ग्राम्य कहते हैं उनके बीच तो इस उपमा की बड़ी-बड़ी सारी किताबें लिखी गई हैं किन्तु ग्रामीण और घरेलू बोलचाल में भी इसका अनुपम प्रयोग किया जाता है जैसे (गोर बेटौना सांड़)—(मम्मा जैसा मजूर)—(पतमा जैसा बाल) इत्यादि अंगरेजी में इस प्रकार के कथन को 'सिमिली' कहते हैं और यह साहित्य की पहिली सीढ़ी है। हमारे यहाँ के साहित्य के एकमात्र आधार और साहित्याचार्य-धर्माचार्य विद्वानों ने इस उपमा की यहाँ तक मान की है आज हम उसी के सम्बन्ध में कुछ लिखना चाहते हैं। दण्डी आचार्य का मत है—

यथाकथंचित्सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते।
उपमा नाम सा—

किसी के वर्णन में जहाँ वर्णनीय की उत्कर्षता और वर्णन में चमत्कार पैदा करने वाला किसी प्रकार का सादृश्य दिखाया जाय वह उपमा है। रस गंगाधर में जगन्नाथ पंडितराज का मत है—

सादृश्यं सुन्दरं वाक्यार्थोपस्कारकमुपमा।

सौन्दर्य अर्थात् चमत्कृति जिससे चित्त में एक प्रकार का आनन्द विशेष पैदा हो उठे ऐसा जो उपस्कृत वाक्य या अर्थ है वह उपमा है। सादृश्य धर्म गुण और क्रिया से लिया जाता है।

(हंसी व धवलकीर्ति)

आपकी कीर्ति हंसी के समान धवल है। यहाँ दोनों में सामान्य गुण धवलता में सादृश्य दिखाया गया है।

(अम्भोरुहमिवाताम्रं मुग्धे करतलं तव)

मुग्धे तेरा हाथ कमल के समान ताम्रवर्ण है। यहाँ कमल और नायिका के हाथ की ललाई साधारण धर्म में सादृश्य है।

(इतीतमिवमायाति वधूर्गजवधूरिव)

यह वधू गज-वधू (हथिनी) की-सी मटकीली चाल से चली आ रही है। यहाँ आना इस क्रिया में सादृश्य है।

(आकाशमाकाशतेऽत्यर्थं शिववद्विधुभूषणं)

चन्द्रमा से भूषित आकाश शिव के समान शोभा दे रहा है। यहाँ शिव रूप द्रव्य से सादृश्य पाया जाता है।

कभी प्रसिद्ध बात को विपर्यय उलट कर उपमा दिखाई जाती है इसे विपर्यासोपमा कहते हैं। (तवाननमिवोन्निद्रमरविन्दमभूदिदं) तेरे मुख के समान खिला हुआ अरविन्द था। यहाँ खिलना धर्म पुष्प का है जो अरविन्द (कमल) में होता है सो मुख में माना गया यह विपर्यय है। विश्वनाथ का मत है कि यह उपमा से अलग प्रतीप नाम का एक दूसरा ही अलंकार है अर्थात् जो उपमान है उसे उपमेय बना देना जैसे (त्वल्लोचनसमं पद्मं त्वद्वक्त्रसदृशो विधुः) तेरे लोचन के समान पद्म है और तेरे मुख के समान चन्द्रमा है। नेत्र की उपमा कमल से और मुख की उपमा चन्द्रमा से बहुधा दी जाती है सो यहाँ उलटा किया गया। और भी।

"त्वल्लोचन समानकान्तिसलिले मग्नं तदिन्दीवरं मेघैरन्तरितः प्रिय तव मुखच्छायानुकारी शशी। येऽपि त्वद्गमनानुसारिगतयस्ते राजहंसा गताः त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते।"

रामचन्द्र सीता के वियोग में कहते हैं—प्रिये तुम्हारे नेत्र की कान्ति के समान कान्ति रखने वाले जो कमल थे सो इस वर्षाऋतु के आ जाने से पानी में डूब गए। तुम्हारे मुख की छाया का अनुकार करनेवाले चन्द्रमा को बादलों ने आकर छिपा लिया। जो तुम्हारी सी-चाल का अनुकरण

करनेवाले हंस थे वे भी मानसरोवर को चले गये। अस्तु, तुम्हारे वियोग में जिस वस्तु में तुम्हारा कुछ भी सादृश्य था उसी से ही हम अपना जी बहलाते थे। दैव प्रतिकूल हो उसे भी न देख सका।

एक अनन्वय उपमा है—'तवाननमिवोन्निद्रमरविन्दमभून्मुखम्' तेरे मुख के समान कमल खिला है और कमल के समान तेरा मुख। अनन्वय (गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः। रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव)। आकाश की उपमा आकाश ही है। समुद्र के बराबर का समुद्र ही है। राम और रावण का युद्ध राम रावण के युद्ध ही की उपमा हो सकता है। और भी—(गिरिरिव गजराजोऽयं गजराजवदुच्चकैर्विभाति गिरिः। निर्झर इव मदधारा मदधारेवास्य निर्झरः स्रवति) ऊँचाई में यह हाथी पहाड़-सा है और यह पहाड़ हाथी-सा ऊँचा देख पड़ता है। झरने के समान इसके मद की धारा बह रही है। इस पहाड़ से झरने हाथी के मद-से बह रहे हैं। चन्द्रालोक में इस प्रकार की उपमा को अन्योन्य-अलंकार कहा है। उत्प्रेक्षितोपमा-(अन्यत्रास्या मुखश्रीरित्यलं चिन्तयेन्दवानया परेषि सत्पात्रमेकमेव मुखमिति व्यतिरेकोपमा) मेरे ही में उसके मुख की शोभा है, चन्द्रमा यह तेरा घमण्ड करना व्यर्थ है क्योंकि वह कमल में भी है। इस उपमा को व्यतिरेकोपमा कहते हैं। (किं पद्ममन्तर्भ्रान्तालि किंते लोलेक्षणं मुखम्) भ्रमर सहित मुख यह तेरा मुख है या भ्रमर को भीतर छिपाये हुए कमल का पुष्प है। यहाँ सन्देहालंकार का सादृश्य काफी पुष्ट से है।

(पद्मं बहुरजश्चन्द्रः क्षयी ताभ्यां तवाननम्। समानमपि सोत्सेकमिति निन्दोपमा स्मृता) पद्म और चन्द्रमा तेरे मुख के समान तो है पर पद्म में रज अर्थात् धूलि जो फूलों में साधारण रीति पर रहती ही है और चन्द्रमा क्षयी अर्थात् घटा-बढ़ा करता है इससे निन्दा के योग्य है और तेरे मुख में पूर्वोक्त कोई दोष न होने से सर्वथा तेरा मुख अनिन्दनीय है। इसे निन्दोपमा कहते हैं।

(ब्रह्मणोऽप्युद्भवः पद्मश्चन्द्रः शम्भुशिरोधृतः। तौ तुल्यौ त्वन्मुखेनेति सा प्रशंसोपमोच्यते) पद्म जिससे ब्रह्मा पैदा हुये हैं और चन्द्रमा जिसको

महादेव ने अपने सिर पर धारण किया है सो तेरे मुख के सदृश हैं तो तेरे मुख की कहाँ तक प्रशंसा की जाय। इसे प्रशंसोपमा कहते हैं।

(शतपत्रं शरच्चन्द्रस्त्वदाननमिति त्रयं। परस्पर विरोधीति सा विरोधोपमा मता) कमल शरद् की पूनो का चाँद और तेरा मुख ये तीनों परस्पर एक दूसरे के साथ होड़ करते हुए आपस में एक दूसरे के विरोधी हैं—इसे विरोधोपमा कहते हैं।

(नजातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितु। कलंकिनो जड़स्येति प्रतिषेधोपमैवसा)

कलंकी और जड़ चन्द्रमा की तेरे मुख के साथ होड़ करने की भला क्या सामर्थ्य है। इसे प्रतिषेधोपमा कहते हैं।

(साम्यं सरोजाक्षि वदनीयमिदं भुवि। शशांकस्तव वक्त्रेण पामरैरुपमीयते)

हे कमल के समान नेत्रवाली इस बात को सुनकर कि पामर लोग सब काम बारह पसेरी के हिसाब पर चन्द्रमा को तेरे मुख के साथ बराबर करते हैं। इसमें भी वही पहले कही हुई बातों का सब तात्पर्य है।

(न पद्म मुखमेवेदं न भृ गौचक्षुषीइमे) यहाँ यह पद्म नहीं किन्तु मुख है। यह भृङ्ग नहीं वरन् नेत्र है। सत्य बात को बतला कर संदेह दूर करता है इससे इसका नाम तत्वाख्यान उपमा है।

(कान्त्या चंद्रमसं धाम्ना सूर्यंधैर्येण चार्णवं। राजन्ननुकरोषीति सैष हेतूपमा मता)

हे राजा तुम शरीर की कान्ति के कारण चन्द्रमा का तेज और प्रताप के कारण सूर्य का और गम्भीरता के कारण समुद्र का अनुकरण करते हो। इसे हेतूपमा या कारणोपमा कहते हैं।

(बालेवोद्यान मालेयं साल कानन शोभिनी) सालवृक्ष के (कानन) वन से शोभायमान दूसरे पक्ष में अलक सहित (आनन) मुख से शोभायमान

प्रजाप्रमर्षकार्य स्वाधीनपतिका यथा॥
सैर्यममायेषु सुधारसप्रभा मुग्धरकर्पूरजलाभिषिक्तपुष्पैः।
मनोरमपीर्षमाणः शरीरिणी प्राणेश्वरी लोचनयोश्चरम्या।
कृत कुसुमालेन कामिनीमप्यपापुना।
प्रेमामलेन चन्द्रेण माहेन्द्रोऽपि विवर्जिता॥

इन श्लोकों में ऊपर कही भाँति भाँति की उपमा पाई जाती है, रसिक जन जिन्हें संस्कृत से परिचय है जान लेंगे। केवल भाषा जाननेवालों को इस लेख के पढ़ने में श्रम और अरुचि होगी इससे उनसे प्रार्थना है कि क्षमा करें और यदि मन लगा के पढ़ेंगे तो निर्णय कर सकेंगे कि हमारी आर्य-भाषा और दूसरी-दूसरी भाषाओं में क्या अन्तर है। निश्चय जानिये उर्दू फारसी के शायरों को तथा अंगरेजी भाषा के कवियों के ध्यान में ऐसी अद्भुत अनोखी चातुरी कभी नहीं आई। यह पथ ही निराला है ऐसी किसी को सूझी ही नहीं।

जुलाई, १८८६

१२—रुचि

कोई काम हो उसकी तरह पर कभी नहीं होता जब तक उस काम में रुचि न हो। गीता में भगवान् कृष्णचन्द्र ने कहा भी है—

बिना श्रद्धा अर्थात् रुचि के जप तप दान हवन आदि जो किया जाता है, सब व्यर्थ है—करना न करना दोनों एक-सा है। न परलोक में उसका कुछ फल मिलता है, न इसी लोक में उस काम की कोई तारीफ करता है। शास्त्रकारों ने विधिपूर्वक या विधिवत् पर बड़ा जोर दिया है। सच पूछो तो रुचि या श्रद्धा से किसी काम का करना ही विधि है क्योंकि विधि तभी हो सकती है जब मन में हमारे उस काम की ओर रुचि है। ध्यान जमाकर देखिये तो मनुष्य जन्मते ही रुचि में इतना बँधने लगता है मानों रुचि उसकी दासी या जरखरीद लौंडी हो। बच्चे को माँ के दूध के एवज गाय या बकरी का दूध सीसी या रुई के फाहे में दिया जाता है तो वह उसको उसी रुचि से नहीं पीता जैसा माँ का दूध। ऐसे ही माँ की गोद के बदले उसे पालने या चारपाई पर सुला दो तो कदाचित् दस में दो-एक ऐसे होंगे जिनको बिना रोये-धाये खुशी से उस पर लेटे रहना रुचेगा। फिर ज्यों-ज्यों उमर में वह बढ़ता जाता है, अपने हर एक काम खाना पीना सोना ओढ़ना पहिनना खेल-कूद, पढ़ना लिखना आदि में रुचि को जगह देता जाता है।

रुचि ही के जुदे-जुदे प्रकारान्तर या उसकी बारीकियाँ फैशन के नाम से चल पड़े हैं इस नई सभ्यता के जमाने में जिसकी हद से ज़ियादह छान-बीन हो रही है। फ्रांस और इंगलैंड सरीखे मालदार सभ्य देशों में जिसकी यहाँ तक उन्नति है कि सुनते हैं इंगलैंड में अमीर घरानों की लेडियों के लिये दिन में तीन बार पेरिस से उनके पोशाक आदि वेष भूषा का नमूना आया करता है। वैसे ही हम लोग भी अपने खाने-पीने में रुचि की बारीकियों

को देहद बढ़ाये हुये हैं। कोई कहते हैं हम नहीं जानते लोगों को रोटी खाना कैसे पसन्द आता है हमको तो दोनों जून ताजी-ताजी पुपुई और बेढ़नी मिलती जाय तो कभी कच्ची रसोई का नाम न लें। दूसरे कहते हैं, तुम्हारी भी क्या ही रुचि है ! पुपुई-सी सकील चीज तुम्हें कैसे रुचती है कभी नहीं बिना कच्ची रसोई खाये जी भरता है। हमारे हिन्दुस्तान में कच्ची रसोई का तरीका ऐसा बढ़िया रक्खा गया है कि अगर उसकी पूछ को मौका दिया जाय तो हकीकत में रसोई रसायन हो जाती है। एक तीसरे हैं कि खाना मुसलमान बहुत अच्छा पकाते हैं, मुसल्लम गोश्त की किस्में। इस पर कोई कंठीबन्द वहीं पर बैठे थे बोल उठे—हरे-हरे तुम्हारी रुचि कैसी है हम नहीं कह सकते। हमको तो मांस भोजन का नाम सुन मिचलाई आने लगती है। आपने हमारे गोपालमन्दिर की [illegible] मोहनभोग और दूसरे-दूसरे उत्तम प्रकार के भोग का महाप्रसाद मालूम होता है कभी आँख से भी नहीं देखा नहीं तो मुसलमानों के भोजन को कभी न सराहते ?

ऐसे ही पेय वस्तु में भी रुचि का ढोंग बढ़ाती है। पीना हम उसे कहेंगे जो बिना दाँतों की सहायता के केवल जीभ और तालू द्वारा हलक के भीतर जाता है। परन्तु रस के ज्ञान में रसना अर्थात् जीभ का अधिक सम्बन्ध है तो यहाँ रुचि की उभाड़ भी जाती है। पेय पदार्थों में सबसे पहले पानी है जिसको वैद्य लोग जी कहते हैं—शरद् और बसन्त-ऋतु को छोड़कर और महीनों में नदी का पानी पीने योग्य है।

"पानीयं पानीयं शरदि वसन्ते च पानीयम्।
नादेयं नादेयं शरदि वसन्ते च नादेयम्॥"

कोई कहता है हम तो सदा ताजा पानी पीते हैं और इसके सैकड़ों फायदा समझता है। दूसरा कहते हैं हम तो जाड़े में भी बरफ पानी पीते हैं और गरमियों में तो बिना बर्फ प्यास बुझती ही नहीं। जाड़े में एक

अंगरेजी पढ़े यहाँ बैठे थे बोले—आपको मालूम नहीं कितने निहायत बारीक कीड़े पानी में रहते हैं। इसलिये इसे छान लेना बहुत जरूरी है। लिखा भी है—

"वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्"।

मैंने तो एक फिल्टर खरीदा है उसी में छान बिल्लौर ग्लास में पानी पीता हूँ। बर्फ के साथ शीशे के ग्लास में पानी रख पीने में बड़ा मजा मिलता है। इतने में एक तीसरे साहब बोल उठे—हमको ये सब खटराग मालूम होता है। यहाँ तो खरा खास फस्साबाजी पसन्द आता है। प्यास ने सताया तो दो ग्लास फेंक दिये सोडावाटर का बोतल मुँह में लगाया गट-गट उतार गये कलेजा तर हो गया। इतने में एक चौथे साहब जो वहाँ मौजूद थे कहने लगे—हे भगवान्! धर्म के अब तुम्हीं रक्षक हो। न जानिये कैसा समय आया है कि अँगरेजी पढ़-पढ़ लोग भ्रष्ट हो जाते हैं। हमने तो कैसी ही प्यास लगी हो बिना चरणोदक मिलाये जल कभी नहीं पीते।

अब सोने को लीजिये। चमिरियाँ खटमल से भरी हुई टूटी खाट से ले मसहरी पलंग ईजी-चेयर और कोच तक न जानिये कितने खटराग रचे गये हैं। सो सब इस रुचि ही के भाँति भाँति के विचार हैं। इतने पर भी जब नींद का झोंका आता है तब यह रुचि यहाँ तक बेहया बन जाती है कि कंकड़ पर भी सो रहे तो मखमली कोच का मजा मिलता है।

"निद्रातुराणां न च भूमिशय्या"।

ऐसे भी कितने सोनेवाले मनहूस पाये जाते हैं कि चलते-चलते सोते हैं खाते-खाते सोते हैं बातचीत करने में एक बात मुँह से निकली तो दूसरे में अन्तर्ध्यान हो गये।

अब पहनावे को लीजिये। लोग कहते हैं यहाँ के लोग पहनना फैशन नहीं जानते। पर इन्हीं सभ्य के सभ्य नागर-निगर लोगों सिंगार के ऊपर सिंगार गये हैं। यहाँ के अनगिनत किस्म के पोशाक और आभूषण चुरी

पूरी रुचि के अनुकूल लिखने लगें तो बड़ी से बड़ी न चाहिये वरन् दिन का दिन समाप्त हो जाय। तो अब देर तक पढ़ने वालों को इस रुचि के भँवर जाल में फँसाय रखना और किसी दूसरे लेख के पढ़ने से वंचित रखना है इसलिये इस सियापे को अब बन्द कर छोड़ते हैं। पढ़नेवालों की रुचि के अनुकूल फिर कभी लिखावेंगे।

नवम्बर, १९०

१३—लौ लगी रहे

लौ लगी रहे तो कठिन से कठिन और दुष्कर से दुष्कर काम सहज से सहज और सुकर है, दुर्गम सुगम असाध्य सुसाध्य है। यहाँ तक कि राई का पर्वत और पर्वत का राई हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है पर जो लौ लगी रहे। किन्तु लौ का लगना ही तो कठिन है। सच्ची लौ लगे तो संसार के क्षुद्र पदार्थों की प्राप्ति तो कुछ हुई नहीं वरन् इन्द्रियातीत जो देवदूत और फरिश्तों को नहीं मिलता वह अनायास मिल सकता है। सच्ची लौ लगी तो जिसमें लौ लग जाती है वह जल थल वायु चेतन आकाश पाताल सब ठौर सबों में वही-वही सूझता है। प्रह्लाद और नृसिंह का इतिहास इसका पूरा उदाहरण है। जिसकी जिसमें लौ लगती है उसको सिवा उस पदार्थ के और सब फीका मालूम होता है उसे रस केवल उसी में मिलता है। विद्यार्थी को विद्या में लौ लगी तो एक-एक क्षण भी व्यर्थ बीतते उसे बड़ा अफसोस गुजरता है। इसी से कहा है—"किं क्षणस्य कुतो विद्या"। कृपण को धन जोड़ने में लव लगी तो एक फूटी कौड़ी भी खर्च करते या किसी को देते बहुत अखरता है—

"क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
किं क्षणस्य कुतो विद्या किं कणस्य कुतो धनम्॥"

प्रेमी को अपने प्रेमपात्र में लौ लगी तो वह कामी आशिक तन मन सब न्यौछावर और दुर्गति सहता यहाँ तक कि सौदाई दीवाना बन जाता है। बैरागी का जामा पहिने हुये लौ लगने के नशे में चूर-चूर सभी को सारा टके के जीवन तक से हाथ धो बैठता है। नीचे के श्लोकों में लौ लगने का बहुत अच्छा चित्र खींचा गया है—

लिया तब उसके लिये सिवाय उपास्य देव के और कौन अमलिक का नदि और शरण देनेवाला हो सकता है। समस्त दृश्य जगत् चाहे अभी विच्छिन्न हो जाय या इस मर्त्यलोक के कीटानुकीट स्वर्गवासी अमरगण देवताओं के ऊपर का दरजा प्राप्त कर लें उपासक के परम कोमल मुग्ध मन में इसका कुछ भी असर नहीं होता। इस बाह्य-जगत् के बनने या बिगड़ने से उसे कोई सरोकार नहीं यदि उसके उपास्य प्रभु का उससे कोई लगाव नहीं।

बड़े-बड़े चक्रवर्ती राज्यों का अधःपात तथा तुच्छातितुच्छ जनसमूहों का सांसारिक वैभव के ऊँचे शिखर पर चढ़ना बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ जिसपर न जानिये क्या-क्या तूमार बाँध ख्याली-पुलाव पकाया करते हैं वे वे बातें जिनकी बुनियाद पर मुल्क या कौम का बनना-बिगड़ना आ टिकता है उनसे अपने प्रभु की सेवा-टहल में लौलीन उपासक को कोई प्रयोजन नहीं जिनका मज़हब हमारे देश में इतना अधिक है और मज़हबी जोश इतना बढ़ा है कि इस तालीम के जमाने में कोशिश करने पर भी मुल्की जोश की ओर हमारी झुकावट होती ही नहीं। भक्ति-मार्ग जो अमृत तुल्य है इस समय हमारे लिए जहर का प्याला हो रहा है। स्वर्ग की सीढ़ी हाथ लगती है एक ही छलांग में हम वे आवें आसन पर जा विराजेंगे— इस अदृष्टवाद के सहारे उनसे जो चाहो सो करा लो जो चाहो सो ले लो कभी इनकार न करेंगे। कोई मुल्की मामिले जिसमें मज़हब या परोक्ष का लगाव न हो कभी उसमें ये प्रवृत्त न होंगे।

अस्तु लौ लगी रहै—उपकारी को परोपकार की लौ लगी है खल को दूसरों की बुराई ढूँढ़ने और पीड़ा पहुँचाने की लौ लगी है सरकार को अपना राज्य की सीमा बढ़ाने की लौ लगी है रूस को हिन्दुस्तान की लौ लगी है। हमारी लौ लगी है कि किसी उदारचित्त और पुण्य के मन में आ जाती हम अपना मित्र या प्रेम कर लेते पर चिरस्थायी हो जाता गुरु जी को लौ लगी है जहाँ तक चेला मूड़े मूड़ते रहें और पन्थ बढ़ाते जायँ। पादरी साहबों को लौ लगी है कि छल-बल-कल जिस उपाय से बने हिन्दुस्तान के लोगों को ईसाई करते रहें, जिसमें विलायत के बड़े-बड़े चैरिटी-

फंड को लूटने का सुभीता रहे हमारी कारगुजारी उन-उन फंड के प्रधान लोगों की निगाह में जँचती रहे। ब्रह्मास्मि कहने वालों की लौ लगी है कि हमीं निर्वाण-पद पा जाय और जन्म-मरण के क्लेश से मुक्त हों। इसलिये कि जब हम ब्रह्म हो गये और वह अजन्मा है तब जनन-मरण फिर कैसा। ब्रह्मास्मि वाले जिनका मनोभाव हवस का बुझा देना मुख्य उद्देश्य है वे भी इस लौ लगने की डोर से कसे हुए हैं। तब हम लोग जिन्हें हवस एक दम के लिये नहीं छोड़ती और आपाधापी-धर्मध्वज काम लोभ-परायण हो रहे हैं उनकी क्या ? अंतर केवल इतना ही है कि जो भले हैं उन्हें भलाई की ओर लौ लगती है बुरों को बुराई की ओर। आदमी का चोला पाय जिसे किसी में लौ न लगी उसका जन्म ही व्यर्थ है।

सितम्बर, १९०७

लिया तब उसके लिये सिवाय उपास्य देव के और कौन आर्तिक का पति और शरण देनेवाला हो सकता है। समस्त पृथ्वी जगत् चाहे अभी उच्छिन्न हो जाय या इस मर्त्यलोक के कीटानुकीट स्वर्गवासी अमरत्व देवताओं के ऊपर का दरजा प्राप्त कर ले उपासक के सरल कोमल मुग्ध मन में इसका कुछ भी असर नहीं होता। इस बाह्य-जगत् के बनने या बिगड़ने से उसे कोई सरोकार नहीं यदि उसके उपास्य प्रभु का उससे कोई लगाव नहीं।

बड़े-बड़े चक्रवर्ती राज्यों का अधःपात तथा तुच्छातितुच्छ जनसमूहों का सांसारिक वैभव के ऊँचे शिखर पर चढ़ना बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ जिसपर न जानिये क्या-क्या तुमार बाँध ख़याली-पुलाव पकाया करते हैं, वे वे घटनाएँ जिनकी बुनियाद पर मुल्क या कौम का बनना-बिगड़ना या टिकना है उनसे अपने प्रभु की सेवा-टहल में लवलीन उपासक को कोई प्रयोजन नहीं। जितना अन्धकार हमारे देश में इतना अधिक है और मजहबी जोश इतना बड़ा है कि इस तालीम के जमाने में कोशिश करने पर भी मुल्की जोश की ओर हमारी झुकावट होती ही नहीं। भक्ति-मार्ग जो अमृत तुल्य है इस समय हमारे लिए जहर का प्याला हो रहा है। स्वर्ग की सीढ़ी हाथ लगती है एक ही उछाल में इन्द्र के आधे आसन पर जा विराजोगे—इस अदृष्टवाद के बहाने हमसे जो चाहो सो करा लो जो चाहो सो ले लो, कभी इनकार न करेंगे। कोई मुल्की मामिले जिसमें मजहब या परोक्ष का लगाव न हो कभी उसमें से प्रवृत्त न होंगे।

वस्तु की लगी रहै—उपकारी को परोपकार की लौ लगी है खल को दूसरे की बुराई ढूँढ़ने और पीड़ा पहुँचाने की लौ लगी है सरकार को अपने राज की सीमा बढ़ाने की लौ लगी है रूस को हिन्दुस्तान की लौ लगी है। हमारी लौ लगी है कि किसी उदारचित्त वीर पुरुष के मन में आ जाती हम अपना निज का प्रेम कर लेते पर चिरस्थायी हो जाता गुरु जी की लौ लगी है जहाँ तक चेला मुँड़े मूड़ते रहें और पन्थ बढ़ाते जाँय। पादरी साहबों की लौ लगी है कि छल-बल-कल जिस उपाय से बने हिन्दुस्तान के लोगों को ईसाई करते रहें, जिसमें विलायत के बड़े-बड़े पैट्री

फंड को लूटने का सुभीता रहे, हमारी कारगुजारी उन-उन फंड के प्रधान लोगों की निगाह में चमकती रहे। ब्रह्मास्मि कहने वालों की लौ लगी है कि हमीं निर्वाण-पद पा जाय और जन्म-मरण के क्लेश से मुक्त हों। इसलिये कि जब हम ब्रह्म हो गये और वह अजन्मा है तब जनन-मरण फिर कैसा ! ब्रह्मास्मि वाले जिनका मनोभाव हवस का बुझा देना मुख्य उद्देश्य है वे भी इस लौ लगने की ओर से बचे हुए हैं। तब हम लोग जिन्हें हवस एक दम के लिये नहीं छोड़ती और आठोपाहर-पर्यंत काम-क्रोध-परायण हो रहे हैं उनकी क्या ? अंतर केवल इतना ही है कि जो भले हैं उन्हें भलाई की ओर लौ लगती है, बुरों को बुराई की ओर। आदमी का चोला पाय जिसे किसी में लौ न लगी उसका जन्म ही व्यर्थ है।

सितम्बर, १९०२

१४—नाम में नई कल्पना

बाजीदीन मसुरियादीन गयादीन धुर्पादीन छीतलादीन माता-दीन मलकानदीन आदि दीनवाले नामों की हीन दशा पर हमें भी एक नई कल्पना सूझती है 'अहिम अजीरम दीम'। नाम कैसे होने चाहिये वो पहिले यहीं पर हम लिख चुके हैं। अब इस विषय को प्रसंग प्राप्त देख पिष्ट-पेषण की भाँति फिर इस पर कुछ कहा चाहते हैं।

नामकरण भी देश या जाति की तरक्की की कसौटी है। जिस जाति में तरक्की रहती है उस जाति में नाम भी उतने ही शिष्ट-संप्रदाय के रक्खे जाते हैं। हम लोग जैसे और बातों में पीछे हटे हैं वैसे ही नाम रखने में भी। नाम के सुनते ही किसी घराने या जाति के रुचि-वैभव की पूरी परख हो जाती है। बंगाली भारत के और-और प्रान्तवालों की अपेक्षा यहाँ तक आप बढ़े हैं और जितना अधिक रुचि का विस्तार इनमें है यह उनके कर्ण रसायन कोमल पदावली-संघटित नामों ही से सूचित होता है। यही हम लोग यहाँ तक रुचि-विस्तार में वंचित हो रहे हैं यह हम लोगों के छाया सुधा कल्लू गुदरू चिमन आदि नामों से प्रगट है। वरन् इसी रुचि की दरिद्रता ने हम लोगों में एक खयाल पैदा कर रक्खा है कि घिनौना नाम रखने से बालक चिरजीवी होता है। इसी बुनियाद पर मनकू, मगरू बरछू घसीटू, झुनझुन घुमघुम पत्तम्मू सहरू ओपत ओछू, छोटू, निनकौड़ी दमड़ी छदामी आदि अनर्गल कर्णकटु घिनौने नाम रख दिये जाते हैं। किमत्र परं ? अहिम का अजीरम और समझदारों का जौहर तो है। इसी जौहर में नाम ही का क्या हमारी न जानिये कितनी बातों को अपनी मुट्ठी में कर रक्खा है। जैसे स्त्रियाँ पढ़ाने-लिखाने से फूलती-फलती नहीं। मकान तंग और वायु-संचार-वंचित हो तो उसमें रहने वाले सदा [illegible] और प्रसन्न रह कल्पने-कलपते हैं। ऐसी ही समझ ने प्लेग को देख

में टिक जाने के लिए सहायता दी है। मन्द और तंग मकान में कबूतरों को भाँति सिकुड़-सिकुड़ाये के रहने पीले नाम से ज़र्द पड़ गये क्या वे फूलते-फलते तो जायेंगे। किससे कहें? इन गर्दखोरों के फूलने-फलने से क्या फायदा?

मारवाड़ी और सिन्धी आदमियों के नामों में बहुधा मल लगा रहता है। जिनके नाम में मल है तो उनके काम में कहाँ तक मल न होगा? सम्पूर्ण अभिलाषायें बड़ी-बड़ी मुगल और सिकन्दरियों को छान डालो मिट्टीमल कहीं न पाओगे। कोई-कोई जिनमें तरफदारी की बू आ गई है अपने लड़कों का नाम काफिया बन्दी के साथ रखते हैं जैसे घुन्नू मुन्नू माधो माधो सोहन मोहन रतन जतन मन मन्नू छोंगू मोंगू और लड़कियों का रम्मो सम्मो छम्मो मुन्ना चुन्नो मुन्नी इत्यादि। पुराने ढर्रे को छोड़ कोई नाम निकालना हमने सीखा ही नहीं तब नामकरण में नया ढर्रा कहाँ से लावें? चरनदास रामदास गनेशदास आदि बहुधा एक ही नाम के एक मुहल्ले में बीसों पाये जाते हैं। न जानिये क्यों हमको इन नामों पर जम्हाई आती है। इनमें भी कुछ फर्क नहीं नीच जाति मेहतर-भुंगियों का नाम रक्खेंगे वही ऊँच जाति वाले ब्राह्मण-क्षत्री भी। पुरुषों के नाम में महादेव नारायण राम और स्त्रियों में गंगा यमुना पार्वती लक्ष्मी सुलक्षणा। छोटे से छोटे शहर में एक-एक नाम के हजारों पाये जाते हैं। वही बंग देशियों में स्त्रियों के नाम कैसे सरस और मनोज्ञ रक्खे जाते हैं जैसे कामिनी निस्तारिणी त्रिभुवन-विमोहिनी कादम्बिनी मृणालिनी सरोजिनी कुमुदिनी नलिनी क्षीरोदवासिनी सुकेशी उर्वशी वारिमुखी स्वर्णमयी इत्यादि। इस भाषा में जुम्मी पम्मा मम्मा फत्तस्मी इत्यादि। फिर गृहस्थिन कुलवन्ती और वेश्याओं के नाम में कोई अन्तर नहीं रहता। बनारस में जानकी सरस्वती लक्ष्मी कमला आदि नाम वेश्याओं के हैं।

मुसलमानों का हम अपने से हेठा समझते हैं पर नाम रखने में वे हमसे कितने बढ़े हैं। फातिमा आयशा जैनब मरियम आदि देवियों के नाम

वेश्याओं के न पाओगे। अंगरेजियों की भाँति चम्पकमाला विलासिनी कामिनी मोहिनी उन्मादिनी स्वर्णलता मालती कामधुरा वसन्तसेना पिकबैनी मेनका तिलोत्तमा आदि रखने में तो कौन-सी हानि पर गृहस्थ और भले मानुषों को जब इसका ध्यान नहीं तो वेश्याओं को क्यों हो? कितने युगलात्मक नाम न जानिये किस अशुभ पर रक्खे जाते हैं न नर न मादा जैसे राधाकृष्ण सीताराम गौरीशंकर इत्यादि। इस तरह के नामवालों को क्या समझें? स्त्री या पुरुष दोनों एक साथ हो नहीं सकते। कितने अपने नाम से आधे हिन्दू हैं आधे मुसलमान जैसे रामगुलाम राम-बख्श कुँअरबहादुर। कितने जन्मे तो हिन्दू के घर पर नाम से मुसलमान ही रहे जैसे रायबहादुर, अमीर बहादुर, नवाबबहादुर, बख्तबहादुर। हमारे कायस्थ महाशयों में इस तरह के यवन-सम्पर्क-दूषित नाम बहुत मिलते हैं।

भक्ति की भावना ने भी हम लोगों के नामों की खूब ही नाक कटाई है। अपने इष्ट-देव के नाम के अन्त में दीन या दास का पद लगा दिया जाता है। न जानिये किस धुन ऐसी सरस्वती मुख से निकल पड़ती है। कहते-कहते अन्त में दीन और दास हो ही तो गये। काम में दास तो नाम में क्यों न हो? महेन्द्र उपेन्द्र सुरेन्द्र ब्रजेन्द्र नरेन्द्र आदि प्रभुतासूचक नाम क्यों रक्खे जायें? दासत्व तो नस-नस में समाया है। मनु ने दासान्त नाम शूद्र और हीन जाति के लिये कहा है। चारुदत्त विष्णुमित्र भूरिश्रवा व्यवसत सुमति सत्यसेन कामपाल नाम तो अब सपने के खयाल हो गये। अब तो।

"धोबी के घर परमदास हैं बाम्हन पूत मदारी।"

हमारी पुरानी भली बात सभी लुप्त हो गई तब नाम ही की क्या! बहुधा ये दास और दीन नामवाले नाक कुलाय-घुमाय कहीं जब से लिख तक भर में जिसमें हिन्दुस्तानी होने की वासना भी न पाई जाय ऐसी साइन्स ही सभ्यता के सिरमौर बनते हैं, पर उनके नाम से प्रकट हो जाता

है कि जिस कुल को उन्होंने अपने जन्म-ग्रहण से कदर्थ कर डाला उस घराने में सभ्यता का कहाँ तक प्रकाश था। सच है—

"मूर्ख पुत्रस्तु पण्डित पुण्यवन्मन्यते जगत्" इत्यादि नाम के सम्बन्ध में बड़े से बड़ा आल्हा गाने पर भी न चुकेगा।

अक्टूबर, १९०५

वेश्याओं के न पाओगे। अंगरेजियों की भाँति चन्द्रभागा विलासिनी कामिनी मोहिनी उन्मादिनी स्वर्णलता मालती कामकुंज बसन्तसेना पिकबैनी मेनका तिलोत्तमा आदि रक्खे जाँय तो कौन-सी हानि पर गृहस्थ और भले मानुषों को जब इसका ख्याल नहीं तो वेश्याओं को क्यों हो? कितने मुख्तसर नाम न जानिये किस उसूल पर रक्खे जाते हैं न नर न मादा जैसे राधाकृष्ण सीताराम गौरीशंकर इत्यादि। इस तरह के नामवालों को क्या समझें? स्त्री या पुरुष दोनों एक साथ हो नहीं सकते। कितने अपने नाम से आधे हिन्दू हैं आधे मुसलमान जैसे रामगुलाम राम-बख्श कुँवरबहादुर। कितने जन्मे तो हिन्दू के घर पर नाम से मुसलमान ही रहे जैसे रायबहादुर अमीर बहादुर, नवाबबहादुर, बख्तबहादुर। हमारे कायस्थ महाशयों में इस तरह के यवन-सम्पर्क-दूषित नाम बहुत मिलते हैं।

भक्ति की भावना ने भी हम लोगों के नामों की खूब ही नाक उड़ाई है। अपने इष्ट-देव के नाम के अन्त में दीन या दास का पद लगा दिया जाता है। न जानिये किस घुन में ऐसी सरस्वती मुख से निकल पड़ती है। कहते-कहते अन्त में दीन और दास हो ही तो गये। काम में दास तो नाम में क्यों न हों? महेन्द्र उपेन्द्र सुरेन्द्र ब्रजेन्द्र नरेन्द्र आदि प्रभुतावाची नाम क्यों रक्खे जायें? दासत्व तो नस-नस में समाया है। मनु ने दासान्त नाम शूद्र और हीन जाति के लिये कहा है। चारुदत्त विष्णुमित्र भूरिश्रवा वसुदत्त सुमति सत्यसेन कामपाल नाम तो अब सपने के खयाल हो गये। अब तो।

"धोबी के घर परमदास है बाम्हन पूत मदारी।"

हमारी पुरानी सभी बात जभी लुप्त हो गई तब नाम ही की क्या! बहुधा ये दास और दीन नामवाले नाक घुमाय-घुमाय कहीं नख से शिख तक भर में जिनमें हिन्दुस्तानी होने की वासना भी न पाई जाय इंग्ली-शाइज ही सभ्यता के सिरमौर बने हैं, पर उनके नाम से प्रकट हो जाता

है कि जिस पुत्र को उन्होंने अपने जन्म-ग्रहण से कृतार्थ कर डाला उस घराने में सभ्यता का कहाँ तक प्रकाश था। सच है—

"मूर्ख पुत्रस्तु पण्डित पुत्रवन्मन्यते जगत्" इत्यादि नाम के सम्बन्ध में बड़े से बड़ा मसला पाने पर भी न चुकेगा।

अक्टूबर, १९०९

१५—बड़ों के बड़े हौसिले

हमारे यहाँ के ग्रन्थकारों ने तृष्णा को पिशाची कहा है और निश्चय कर गये हैं कि इसका अन्त कभी होता नहीं वरन् इसका अन्त होना ही सुख की सीमा है। हम यह दिखाया चाहते हैं कि यह उनकी भूल है, सुख की सीमा चाहे हो या न हो पर तृष्णा का क्षय हो जाता है। हाँ इतना कि जो बेचारे हकीर छोटे लोग हैं उनकी तृष्णा भी बड़ी छोटी ऐंच खाँच-खींच की लम्बी चौड़ी बात की बात में बुझ जा सकती है किन्तु जो बड़े लोग कहलाते हैं उनमें बड़प्पन के अनुसार सभी बात बड़ी होती है।

"सर्वं हि महतां महत्।"

जब हौसिले के नाम से तृष्णा भी उनकी बहुत बड़ी होनी चाहिए जो थोड़े में कभी बुझती ही नहीं। आसमान के सातवें तह या बलन्द हौसिले जहाँ परिन्द भी पर नहीं मार सकता थोड़े में क्या बुझ सकते हैं? इसी से लोगों ने सिद्धान्त कर लिया है कि तृष्णा का क्षय हुई नहीं। किन्तु यह सिद्धान्त उनका क्या भूल से खाली नहीं है? विचार की कसौटी पर कसने से चित्त इस स्वीकार नहीं करता कि तृष्णा का अन्त हुई नहीं। हाँ बड़े और छोटे लोगों की तृष्णा में फरक अलबत्ता होता है।

हम हिन्दुस्तानियों की छोटी बुद्धि छोटी समझ छोटी वाकफियत छोटी हैसियत ! तब हमारी तृष्णा भी नितान्त छोटी हुआ चाहे। पढ़-लिख दस-बीस की नौकरी पा गये अपने को कृतकृत्य मान बैठे और जो कहीं सौ-पचास के हेड-क्लर्क इंस्पेक्टर, तहसीलदार, डिप्टी या सदर अमीन कर दिए गये तो फिर क्या आसमानों के ओर-छोर को पहुँच गये सुख की सीमा के पार हो गये। हाँ उनकी तृष्णा के क्षय में बेशक तरद्दुद

जा पड़ता है या हर तरह पर बलन्द समझे गये हैं आफिस में बुलन्द धाक-रूपी और सभ्यता में बलन्द शान में बलन्द इतिहास और एशा में बलन्द अफ़सरदारी में फ़ैशन की दिखावट में ऊँचे ईमानदारी में बलन्द तब हौसिला भी उनका बलन्द होना ही चाहिये। जब तक छोटे हाकिम लाट से लेफ्टिनेन्ट न हों तृष्णा का अन्त होता ही नहीं। हम लोग राय-बहादुर, सी० एस० आई० या राजा कर दिये गये हौसिला पूरा हो गया। विलायत के शाही खानदान वाले जो लार्ड या अर्ल कहलाते हैं उनके ऊँचे हौसिले का अन्त तब तक नहीं होता जब तक प्राइम मिनिस्टर वजीर आज़म या कुल सिपाह-सुपुर्द के मालिक महारानी के प्रतिनिधि हिन्दुस्तान के गवर्नर जेनरल न कर दिये जाँय। हिन्दुस्तानी फौजी अफ़सर फौज में सौ-पचास की कोई नौकरी पा जाने ही से सन्तुष्ट हैं उनका हौसिला उसी बलन्दी के छोर को पहुँच जाता है। वही विलायती फौज के अफ़सर जब तक कमाँडर-इन-चीफ़ न हो उनका हौसिला पूरा नहीं होता।

हमारे देश के रुपये वालों के हौसिले का अन्त इतना ही से है कि घर बैठे पाँच आना चार पाई का ब्याज मिलता रहे देहली के बाहर पाँव न रखना पड़े। किसी बड़े कारखाने में रुपया लगा देश से परले दर्जे पर ब्याज का घाटा हो सकने परिणाम है उत्पन्न काम न चला तो पूँजी से भी हाथ धोना पड़ता। विलायत वाले एक लाख की पूँजी से जब तक दस लाख का कोई काम न करें उनका हौसिला थमता ही नहीं। इंगलैंड अमरीका हिन्दुस्तान चीन सब का तब लिये हैं। किसी एक काम में कुछ थोड़ा सा नुकसान सहना पड़ा तो दूसरे में एक का चार गुना कर वारा-न्यारा हो गये। कम-हिम्मती की निशानी ब्याज का घाटा हमारे समान निश्चय पाने भी देखने तो हमारे आज-दिन तरक्की के जिस घुड़-दौड़ को फैला हुआ है कभी न पहुँचता। सच्ची रूप आप से निष्पक्ष-निर्मित हो विलायत का असली कामभूमि कर रही है या कभी करती? यही हमारे यहाँ रोज़गारियों के उत्साह का अन्त बेजान रहने से हुआ है कि जापान का नाम कहाँ पहुँचा है और बम्बई का दिल्ली-लाहौर में होने के लगे हैं।

इस हुम्माली के काम में रुपये पीछे कहीं एक पाई मुनाफा हो गया निहाल हो गये—रोजगार की चरम सीमा डाँक गये।

हमारे देशों के सुशिक्षितों के उत्साह का अन्त इसी में है कि वेष-भूषा रहन-सहन खान-पान में कहीं पर किसी बात में हिन्दुस्तानी न मालूम हों। क्या करें? लाचारी है, चमड़ा गोरा नहीं कर सकते। कोहना से किरानियों के हौसिलों का खातिमा साहब लोगों की लिस्ट में नाम दर्ज हो जाने से है। पादरी साहब के हौसिला का अन्त तब हो सकता है कि दुनिया के सब लोग नार्थपोल से साउथपोल तक ईसा को अपना मुक्तिदाता समझने लगें। हमारे ब्राह्मणों की तृष्णा का अन्त इसी में है कि नित्य उन्हें लड्डू और जलेबी पेट भर खाने को मिला करें और सबेरे से साँझ तक लाख ढेर सुंघनी सूँघते हुए साँड़ के समान डकराते हुये बैठ रहें।

"परान्नं दुर्लभं लोके शरीराणि पुनः पुनः"

ऐसी सदर्ते के हौसिले का अन्त तब होगा कि हिन्दुस्तानी में एक दाना भी गेहूँ का न रह जाय सबका सब जहाजों में लाद विलायत तथा और मुल्कों में पहुँचाय दें। वैपर साहब के हौसिले का छोर तब होगा कि बीबी उर्दू कुल हिन्दुस्तान की अदालतों में अपना पंजा फैला दे और जितने ऊँचे ओहदे हैं सब उनके कौमवालों के लिये बतौर अमानत के रख दिये जाँय। दुर्भिक्ष-पीड़ित हमारे किसानों के उत्साह का अन्त और उनके सुख की सीमा इसी में है कि सरकार की बाकी न रहने पावे पेटभर कदन्न खाने को मिलता रहे किन्तु मेघराज ने प्रण कर रक्खा है कि 'हम सो न होने देंगे' जब तुम दिन-रात छाती पीसने की मेहनत कर खेती तैयार करोगे तब हम तुम्हें कुछ दिखाय देना मारेंगे और इतना पानी बरसैंगे कि धान्यपर्यंत में असर न पड़े और एक दाना भी तुम्हारे घर में न जाने पावे राजा की नीयत और प्रजा के पुण्य का फल प्रजापर कर देंगे इत्यादि।

जनवरी १८९४

१६—ढोल के भीतर पोल

ऊपर की यह कहावत छोटे बालक से ८० वर्ष के बूढ़ों तक में जैसी प्रचलित है वैसी इसकी चरितार्थता भी सुस्पष्ट है। और किसी देश या जाति में चाहे इसके उदाहरण न मिलते हों या बहुत कम हों पर भारत तो इस समय इस कहावत का मानों उद्देश्य या लक्ष्य-सा हो रहा है जहां की कोई ऐसी बात नहीं है जिसमें पोल न पाई जाती हो—ऊपरी भड़क दुमदमी चटकीलापन देख चित्त चमत्कृत होता है। कभी जी में समाता ही नहीं कि भीतर किसी तरह की न्यूनता या पोल है पर ज्यों-ज्यों तह तक डूब थाहो त्यों-त्यों ढोल के भीतर पोल निकलती आवेगी। दूर न जाव हाल का दिल्ली-दरबार इसका बहुत ही स्पष्ट उदाहरण है। एक-एक छोटे-बड़े राजा महाराजा तअल्लुकेदारों की धूमधाम देखते ही बनती थी जिनका आडम्बर, चमक-दमक और जाहिरी वैभव पर कदाचित् कुबेर भी सकुचाते रहे होंगे। इन्द्र और वरुण भी हार मान बैठे होंगे। लार्ड करजन महोदय के चित्त में भी यही समाया होगा कि निस्सन्देह भारत लक्ष्मी का केन्द्र-स्थान है कितना ही हो यहां का धन कभी चुकने वाला नहीं है या किसी कदर ठीक भी है। यहां की ऐसी कामधेनु धरती है जो अत्यन्त उर्वरा होने से कई करोड़ का धन प्रतिवर्ष उपजा सकती है? जो वर्ष के लिये विलायती-डोनेशन बन्द हो जाय और यहीं का धन यहीं रहने पावे देश का देश सोने-चांदी से मढ़ जाय। अस्तु जिस बनावट और चमक-दमक पर चित्त चकराता था उसे तनिक तह तक डूब खोजो तो वही ढोल में पोल। इन राजा और तअल्लुकेदारों में न जानिये कितने परस्पर की स्पर्द्धा में मात्र बाहरी प्रतिष्ठा बनाये रखने को इतना अपने वित्त के बाहर कर चुके हैं कि भीतर ही भीतर कांपते हुए कई वर्ष के लिये उनकी पोल न दूर होगी। ऐसा ही हमारी कौम में सरकारी अफसर या जुनियरों के

कपटपूर्ण कापटिक आचरणों में ढोल की पोल देख मन में यही आता है कि जो घर के ढहानेवाले चौपटचरन हैं वे किस भरोसे पर बाहर कौम के सुधारक और संशोधक तथा रिफार्मर बनने का दावा बाँधते हैं। किसी प्रामाणिक लेखक ने ऐसा ही कहा भी है—

Breakers of home cannot be the makers of notions

तात्पर्य यह कि जो अपने भीतरी चाल-चलन में लिपट गये हैं, जिनमें अनेक कुत्सित कर्म देख चित्त पैदा होती है, वे इन दिनों सभ्यता की नाक बन हुए देश के सुधार का बीड़ा उठाए हैं। अवश्य ऐसा की कल्पना सोपान के सहारे समाज-उन्नति-मंच के परमोन्नत-शिखर पर चढ़ भारत-सन्तानों को अवश्य उभारकर दिखावेंगे और देश का वह कल्याण होगा जो किसी दूसरी तरह असम्भव था। घर में भूनी भाँग नहीं बाहर कागज का घोड़ा दौड़ाते लाखों का कारबार फैलाये हुये बड़े मातबर और प्रामाणिक सेठ जी या साहजी अपने भर का अपरवास अपने ऊपर ओढ़ मिती पर मिती बराबर बाँधे हुए चुकते चले जा रहे हैं दैव-इच्छा से एक दिन पहिया एक मई मुँह बाय टाट उलट बैठ रहे। हुण्डीवालों की नालिशें लगने लगीं माल-असबाब कुर्क हो गया अदालत का खर्चा भी न उठा। समझते थे कि हुण्डी में जा गया धन आधा ही मिले कुछ तो वसूल हो पर यहाँ धरा था जो केवल ढोल में पोल। पढ़नेवाले कहेंगे यह सरासर है, औरों की पोल ही खोलते इसका जन्म बीतता है अपनी ओर नहीं देखता।

"खलः सर्षप मात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति॥"

हाँ सच है पर यहाँ तो बिना ढोल ही राग और ये निरी पोल है तब उसे क्या खोलें? बड़ा भारी झुमका है। लड़की-लड़के नाती-पोते बहू-बेटियों से घर भरा है। बाहर के लोग देखनेवाले यही कह रहे हैं कुरुरा बड़ा भाग्यवान् है। जैसा ही बड़ा झुमका वैसा ही वाहुल्य और पूछ वैसा है—

"बाहर सोहत यों यह मियाँ जिय मग बरकत है।
मियाँ की गति मिय बान सोंक लैत की बरकत है॥"

बुढ़ऊ भी ऊपर से बड़े भाग्यवान् प्रतिष्ठित और बड़े कुनबे वाले बन संसार में अपना मुँह उजागर किये हैं, पर भीतर की किचकिच लड़ाई-झगड़ों के कारण एक क्षण ऐसा नहीं आता कि जिसमें और झिंझिट से छुटकारा पावें। भोर से उठ आधी रात भी झंझट छोड़ दूसरी बात नहीं।

"सूरदास की काली कमली चढ़े न दूजो रंग॥"

बुढ़ऊ हजार चाहते हैं कि सब छोड़ कहीं एकान्त में बैठ कुछ परमार्थ साधन करें सब-सब चेष्टा करते हैं, पर कभी इस किचकिच से जान छूट सकती है? केवल इतना ही नहीं बड़भागियों में हम भी समझे जाते हैं। इस नशे में चूर हैं नाती हुये पोते हुये परोते हुये सोने की सीढ़ी चढ़े, आज इसकी छठी है कल उसका ब्याह है परसों पोते का मुंडन है, लड़की के लड़का हुआ योतना आया अभी भातना पड़ा नतनी का ब्याह आ लगा भतिहानी भातना पड़ा। तात्पर्य यह कि सब ओर की झंझट और शोच झमाट इस जीर्ण अरण्यम का पुरजा-पुरजे छिन्न डालता है सही पर यह गृहमयी प्रमाद-मदिरा में उन्मत्त है। एक दिन लम्बी तान मुँह बाय ए य घर की सब साहन और एका रह गया। कुनबे के एक-एक आदमी एम मनय बड़ चालम की खिचड़ी पकाने तीन-तेरह हो गये। ढोल म ...न देख पड़ने लगी। बुढ़ऊ की जो कुछ प्रतिष्ठा और भाग्यवानी की साख थी पोल खुल गई। दमार में नाम करते ह लोग समझते हैं यह वा अमुक मदरसे के हेड-मास्टर हैं कुल स्याह-सुपेद के मालिक हैं २०० या ३०० रुपये महीने में कमाते हैं। इनकी बड़े आराम और चैन से कटती है। यहाँ ख़ुद साहब में जो ढोल में पोल है यह उनका जी ही जानता है। दफ़्तर म १० से ४ तक ... में हैरान-परेशान, बात बात में सर दरबार साहब की झिड़की और फटकार की डर, घर में आय फिर वही खिचड़ी। एडिटर साहब करते-करते पचड़ा लिखना आता है। देखन

के दिन भी पूरे न होने पाये बीच ही में हरि शरण बोल गये। लोगों का देना निकला थोड़ा-बाकी सब नीलाम हो गई। ढोल में पोल निकल आई। सब लोग समझते हैं पण्डितजी बड़े विद्वान् महात्मा और सच्चरित्र हैं। किसी तरह की खटपट बिना उठाये घर बैठे यही पुजाते हैं। यह कोई क्या जाने पण्डितजी महाशय के सच्चरित्र में निरी ढोल की पोल है। चेलियों की कटार-सी भौं के कटीले कटाक्ष से घायल बने रहना एक ओर रहा शिष्य-सेवकों का ठाट सम्हालना उनका मन अपनी मूठी में किये रहना क्या कम मुहिम है? हम लोग समझते हैं, हमारी प्रताप-शालिनी न्यायशीला गवर्नमेंट के न्याय-युक्त शासन में शेर-बकरी एक घाट पानी पीते हैं। प्रजा-मात्र के जानमाल की भरपूर रक्षा है। किसी को किसी पर किसी तरह की जोर-जुल्म की कोई शिकायत नहीं है और वास्तव में ऐसा ही है भी किन्तु पुलिस का महकमा गवर्नमेंट ने एक ऐसा कायम कर रक्खा है कि जिससे सब न्याय और इन्साफ की पोल खुलते देर नहीं होती। जिसके संशोधन की बड़े-बड़े कर्मचारी सब-सब फिकर कर रहे हैं पुलिस कमीशन जुदा ही इसके संशोधन में प्रवृत्त है पर कोई कला नहीं चलती एक छोटा-सा कानस्टेबिल भी चाहे तो इन्साफ की ढोल में पोल निकाल [illegible] को भरपूर काफी है। हम समझते थे एडिटरी का काम बड़ी स्वच्छन्दता का है। इसमें कहीं से किसी तरह की पोल नहीं है समय से पत्र निकाल चुप हो बैठे रहे।

"न ऊधो के लेने न माधो के देन।"

पर तनिक डूब के जो देखा तो जैसा इसमें ढोल में पोल है वैसा किसी दूसरे काम में नहीं। टटके से टटके खयाल दिमाग से निकाल चुटीले से चुटीला लेख लिखो कि पढ़नेवाले रीझ तुर्त पत्र का मूल्य भेज दें। पत्र पहुँचा पढ़ कर प्रसन्न भी हुए, किन्तु मूल्य के तकाजे का कार्ड रद्दियों में फेंक तीन कौड़ी का मुँह बनाये बैठे रहे इत्यादि। विचार कर देखो तो इस मायामयी ममता के मोहजाल में फँसानेवाली ईश्वरीय रचना का अद्भुत

स्वरूप है जिसका कोई ऐसा अंग नहीं है जिसमें कहीं पर कुछ न कुछ पोल नहीं है फिर भी यह मायामयी रचना मृग-तृष्णा का पथिक बनाये हम सबों को अपने जाल में फँसाये हुये है। सच है—

"ईदृशी राम मायेयं या स्वमायेन दृश्यता।
न लभ्यते स्वमायोऽन्या प्रेक्ष्यमाणेव नश्यति॥"

और सच तो यों है कि इस जाल से वे ही निकल सकते हैं जिसे वही अपनी दया-दृष्टि के द्वारा बाहर खींच अपना कर ले नहीं तो संसार महोदधि में गोते खाते पड़ रहो।

जनवरी, १९०१

काम से कहीं दूर देश गया है। अचानक तार आया बाबू को प्लेग हो गया। कर्णकटु यह बात सुनते ही घर के लोग घबड़ा गये हाहाकार मच गया। किसी के तन में होश न रहा। दस सभ्य मनुष्य बैठे हैं किसी गुरुतर विषय पर कथोपकथन करते हुए अपना मन रमा रहे हैं। अकस्मात् इसी में कौवा-सा कोई कुम्भेनातराम मक्खि का कोता पर बीसत पास होने से 'परिहासमय' वहाँ पहुँच गया और ऐसे-ऐसे अरुन्तुद कर्ण-कटु शब्द अपनी बोल-चाल में कह डाला कि लोग खफीफ हो गये रसाभास हो गया सब लोग खिन्न-चित्त हो उठ खड़े हुये इत्यादि बहुत-से और उदाहरण सोचने से मिल सकते हैं।

पुरानी इतिहासों को पढ़ने से प्रकट है कि यह कर्ण-कटु अनेक सब नाशकारी घटनाओं का कारण हुआ है। "अन्धे के अन्धे होते हैं" द्रौपदी का दुर्योधन के प्रति यही कर्ण-कटु महाभारत की जड़ हुआ। रामायण में जब रामचन्द्र के पाछे सूने वन में जानकी को अकेली छोड़ जाने से इनकार किया तब जानकी ने कैसे-कैसे अरुन्तुद वाक्य कहे। अन्त में उसका कैसा कुत्सित परिणाम हुआ कि रावण जानकी को शून्य वन में अकेला पाय हर ले गया इत्यादि और भी अनेक उदाहरण इसके मिल सकते हैं।

जून १९०५

१८—प्रकृति के अनुसार जीवन-मरण

ईश्वर ने प्रकृति के नियम ऐसे उत्तम किये हैं कि उनकी सीमा में यदि मनुष्य अपने जीवन की गाड़ी बे-रोक चलने दे तो सन्देह नहीं उसे इस संसार को "आधि-व्याधि-पूरित" कहने का कदापि अवसर न मिले बरन् यह जगत् उसे केवल निरवच्छिन्न सुखों का अखण्ड भण्डार ही दिखे और बार-बार पुष्पदन्त के राग में राग मिला यही कहे—

"इहैव महाराज्यं सकलसुखसामीप्यमखिलम्।"

सच है, मनुष्य दुःख भोगने के लिये नहीं उत्पन्न हुआ किन्तु सृष्टि के विविध दृश्यों में उस अदृश्य बाजीगर के अद्भुत, अगम्य और असम्य कौतुकों को अपने कायिक और मानसिक दोनों नेत्रों से देखकर जो कुछ मन प्रसन्न होता है और वह सुख अमित है, अपार है, अनवधि है, जिसका समझना ही मनुष्य के जीवन की सफलता है, उसकी प्राप्ति दुर्लभ नहीं रहती।

परन्तु यह निश्चय रखना चाहिये कि यह सुख जो यथार्थ में प्रकृति की सर्वोत्तम विभूति है प्रकृति ही के नियमों से प्राप्य है। इस सिद्धि पर पहुँचने के लिए सिवाय प्राकृतिक रोड ही और कोई सड़क नहीं है। परन्तु साथ चलने की आवश्यकता है कि एक गाड़ी फिसल जाय, उलट जाय, गिर जाय और टूट कर नष्ट भी हो जाय तो आश्चर्य नहीं।

हम देखते हैं कि जब से पिता का वीर्य-बिन्दु माता के उदर के स्थान विशेष में अधिष्ठित होता है प्रकृति तभी से अपना काम आरम्भ कर देती है। नौ मास के नियत काल में उस बिन्दु को जननी के शरीर में से अपरिमित शक्तियों की सहायता से मनुष्याकार कर अन्त को पृथ्वी पर ले आती है। यह शंका हो सकती है कि गर्भवास और जनन प्रक्रिया का काल बालक का समय कष्ट और वेदनाओं का होता होगा। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। उसे कष्ट अणु-मात्र भी नहीं होता और यदि होता है तो तभी

"और को सगुनी सगुन बतावे, आप कुत्तों से खिचावे।"

पढ़े-लिखे बड़े लोग खासी दिमाग काम पड़े तो कहो ऐसा लेक्चर झारें कि पहले घंटे भर बाद सब में किन्तु समय पर लेक्चर में कही हुई बात को करके दिखाय देने में कुम बजाय कोसों दूर भागेंगे। कहते आप हैं पर उस भूल का दोष किस्मत होनहार या संस्कार का देते हैं।

परम सुन्दरी कन्या साक्षात् देवी की मूर्ति जिसकी कीमत दस हजार से कम नहीं हो सकती। उसके योग्य लड़का भी पढ़ा-लिखा सुशील सुघ सलीक सब तरह पर उपयुक्त है। पर नाड़ी वर्ग न बना शादी फिस्स कर दी गई। या बना भी तो हाथ अच्छा नहीं है सम्बन्ध नहीं हो सकता। हाथ का अच्छा महा उजड्ड छत्तीसों गुन बनता भी है, उस रूपवती सुन्दरी के साथ ब्याह दिया गया। ब्याह के महीने भर बाद लड़का यमलोक का बटोही हो गया! अब इस समय संस्कार और किस्मत को दोष दे सिर धुनते हैं। अपनी भूल को कभी एक बार भी न पछतावेंगे न अपने मन्दे समाज को कुछ दोष देंगे। किन्तु ऐसे सामाजिक काम हैं जो केवल स्त्रियों ही के आधीन हैं और स्त्रियों की जैसी हीन दशा हमारे देश में है वह विदित ही है। ये उपदेशक लोग बाहर चाहे जितना जोश और जनून दिखलावें घर के भीतर इनके उपदेश अमृत की गन्ध भी नहीं पहुँचने पाती। तस्मात्, हमें तो यही जान पड़ता है कि हमारे देश में सुधारक केवल सपने में बर्राने के समान है। कोई कितना ही सिर खाली करे, होना-जाना कुछ नहीं है। इसीलिये हम कहते हैं हमारे देश में एक नये तरह का जनून पैदा हो गया है।

नवम्बर, १८९२

२९—लोक-एषणा

यह लोक-एषणा या लोक-रञ्जन ऐसी बला है कि कैसे ही आप चोखे से चोखे धर्म कहलानेवाले या सच्चा बर्ताव रखनेवाले हो कुछ न कुछ बनावट किये बिना काम ही नहीं चलता। हाँ विरक्त बन केवल धूम-धूम कर मूस आकाशाहार से निर्वाह कर जनसमाज से दूर रह कहीं निर्जन वन में या बस्ती में तो अलबत्ता संभव है कि इस घृणित लोक-रञ्जना या दुनिया साजी से कदाचित् बचे रह सकते हो। किन्तु आदमियों के समाज में बस आपका शुद्ध अलौकिक बोता होना—शहनाई का बजाना और बने का निश्चय कर रखना है। बुद्धिमानों ने जिसे शुद्ध पारमार्थिक और निरा अलौकिक यहां तक उस विचार रक्खा कि शुद्ध परमार्थ की उसमें कहीं महक भी न बच रही। ईशदेव की व्यापक शक्ति को साष्टांग प्रणाम है जिसके नाम में बड़े-बड़े विरक्त और मुक्त भी फँसे हुये काठ की पुतली से नाच रहे हैं। कभी को ऐसा भी होता है—भीख एसा जटा रखाना तिलक और मुद्रा से वेष भर धीत दाममा आदि ढकोसला जो अनन्त-जाल हम न एक-एक प्रकार है ईश्वर सानुकूल हुआ तो जीविका और पेट पालने के द्वार हो जाते है। कभी का अजितेन्द्रियता को नहीं भी हाले—

"मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्मव्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः
प्रायः परं पुरुष तेऽत्वजितेन्द्रियाणां वार्ता भवन्त्युत नवाऽत्र तु दाम्भिकानाम्"॥

हम तो यही कहेंगे कि जो इस दुनियासाजी के जाल में नहीं फँसा वही बड़ा ज्ञानी बड़ा तपस्वी संयमी यज्ञानु बड़ा भक्त और जीवन मुक्त है। इससे छुटकारा पाना ही योगीश्वरों की सिद्धियाँ हैं। पामर

जनूनी सौदाई, दीवाना महाघिनौना असभ्य बेवकूफ बावली कहलाता हुआ इस घृणित लोक-लज्जा से छुटकारा पाये यह अच्छा। किन्तु साक्षात् दंभ के पूर्णावतार बनकर महामहोपाध्याय पद्मशास्त्री सिद्धेश्वर, योगी होना अच्छा नहीं।

बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि लौकिक से अपने को छूटते न देख लोग दीवाने सौदाई, महा मैले और घिनौने बन गये हैं। राजा सगर के पुत्र असमंजस जड़भरत दत्तात्रेय आदि महात्माओं की पुरातन कथाओं का वास्तविक तात्पर्य इस लोक-लज्जा से छुटकारा पाने ही का है। सच तो यों है कि हम इस लोक-एषणा के लिये जो इतनी चेष्टा करते हैं, तो इसका यही प्रयोजन है कि समाज में हमारी सुर्खरूई रहे कुल की कान गिनती जाय कोई नाम न धरे। जो इस लोक-लाज को न डरा जिसने बेधर्मी का जामा पहिन लिया उसे इस लौकिक से सरोकार ही न रहा। लोकत-ख्यात ऐसे दो ही पाये गये एक तो वे जो सर्व-गुणियासिद्ध और महात्माओं में शामिल हैं दूसरे निलज्ज-दागिये। इन निलज्जियों को भी हम उन सिद्धों से कुछ कम नहीं समझते क्योंकि इज्जत आबरू या मोती की-सी आब उतर जाने का ख्याल जिस परलोक-एषणा का उसका सहम लगा हुआ है निलाज के साथ ही साथ निकल जाता है।

हम ऊपर कह आये हैं कुछ पारलौकिक कामों को भी लोक लज्जा ने अपने जाल में फँसा रक्खा है। आप इस समय राजा बलि-सा महादानी कलियुग के कर्ण बन पुरखाओं का संचित धन बहाये देते हो और "मैं बड़ा उदार दानी हूँ" इस भावना से दिमाग में फूले नहीं समाते पर सोचिये तो नहीं कि शुद्ध परमार्थ के ख्याल से किसी काम में किसी को आपने कभी एक पैसा भी दिया है? जिन्हें जाति-अधम चेहरे-मुहरे से दुरुस्त मोटे ताजे हट्टे-कट्टे देखा उन्हें आपने भी थमथमाना आरम्भ कर दिया। इसलिये कि यहाँ तो यह भी लगी है कि इसे देंगे तो यह चार भले आदमियों के बीच भी रियासत की नाक पाये हुए है वहाँ जाकर हमारा नाम करेगा। अब

अनन्यार्थ दान की यह बात कहाँ रही कि जिसे तुम्हारा दाहिना हाथ दे उसे बायाँ हाथ न जाने।

अब और दूसरे विषय को लीजिये। आप बड़े नैष्ठिक और श्रोत्रिय हैं त्रिकाल-सन्ध्या गंगा-स्नान बलिवैश्वदेव अग्निहोत्र सब भरपूर निबाहते हैं पर सो न यह सब इसलिये है कि बड़े रईस राजा महाराजा का फँसें और हम उन्हें अपना चेला मूड़ मूड़ धन खूब पुजावें। हम काशी प्रयाग वृन्दावन अयोध्या आदि स्थानों को बार-बार असीसते हैं कि भला हम लोग सम्पन्न है जमाने में देवदेव को श्रद्धापन्न तो किये है। इस का रूप विस्तारपूर्वक जानना चाहते हो तो प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक निकाल के पढ़ो। अब रही भक्ति और श्रद्धा की बात सो उन दोनों की निवास भूमि ८४ कोस व्रज में जा के देखिये चित्त मग्न हो जायगा और यही जी चाहेगा कि हम भी व्रज भूमि में क्यों न पैदा हुये कि कृष्ण भगवान् की लीला का अनुभव करते हुये अहर्निश आमोद प्रमोद किया करते—

"परस्परं भोग्यमहर्निशं रतिः स्त्रीभिः समं कामवसन्त लोलुपम्।
भीमोपुलेसापलशैतसो भूमो रीति परामुमरि सारवैरिताम्॥"

हमारे पढ़नेवाले समझते होंगे यह तो बड़ा ही आचार भ्रष्ट सुनाने वाला मुँहफट है बड़ा धर्म का द्रोह चाहनेवाला है। यह कोई क्या जाने यही दिन भी भाड़ में झोंके बैठे हैं लोक-एषणा तो हमारा सिद्धान्त हो रहा है। मन में यही भावना लगी है कि हमारे लेख से लोग रीझें चाहक बढ़ें, टेंट गरम हो। पर किस्मत की कमबख्ती हिन्दी के दुर्दिन और हिन्दू समाज की विरक्ता को यहाँ तक बढ़ाएँ २१ वर्ष बीत गये कलपाते ही रहे। हमारी लोक-एषणा व्यर्थगामिनी थी। इसी से उसमें विराग आज हमने उसी को धर दाबा। हमारे पढ़ने वालों में से जिन्हें इसमें कुछ प्रतिकूल हुआ हो माफ करें क्योंकि हम पहले ही लिख आये हैं कि लोक में रह लोक एषणा से बच रहना असंभव है। अन्त में एक मन्त्र से विराम करते का ध्यान है।

नवम्बर, १९००

एक क्षण भी उसे कल न पड़ती थी और सब काम बन्द रहता था। नाम इसका पूरन था फूमू था। पढ़ा-लिखा एक अक्षर न था। पर चालाकी से सब विषय में टाँग अड़ा देता था। या यहाँ पढ़ने-लिखने का काम ही कौन था।

"लंका निसचर निकर निवासा।
यहाँ कहाँ सज्जन कर वासा॥"

चुनाव को जब कुछ चुहल करना मंजूर होता था तब यह आपस की धक्काबाजी धौल-धप्पड़ हाहा-ठीठी में विदूषक बन जाता था। ब्याह या भोजन के समय बावर्ची या भण्डारी का काम देता था। चौसर या गंजीफा खेलने में साक्षात् ब्रह्म भट्ट यही बन बैठता था। शाम को हवाखोरी के वक्त कोचवान बन जाता था। कभी-कभी तो साईसी भी निभा देता था। विहार स्थान खिलवत में पटक बनता था। सच पूछो तो यही इसका मुख्य काम था भी पूरन क्या यथा नाम तथा गुण सब भाँति बहुगुना वर्तन था—

"साधो ऐसा नर धीर बावरची विदूषकी चर।"

यहीं तक पूरन की खिदमत सिमटी जाय। प्याले पर प्याला जब मदिरा करने लगता था तब जाम को लबरेज करने वाला भी यही होता था। खसम जब ओर-छोर को पहुँचता था तब उस मुर्दे को घसीट खाट पर पटक देनेवाला भी यही होता था।

एक दिन असाढ़ का महीना आधी रात का समय था। शुक्ल पक्ष की सप्तमी या अष्टमी रही होगी। मेह बरस कर निकल गए थे बीच-बीच दो-चार बूँदें पड़ती जाती थीं। पर बादल गड़मड़ा रहे थे आसमान बिलकुल साफ नहीं हो गया था जिससे बोध होता था कि अभी दो-एक बड़े जोर की घुमड़टिका और आया चाहती है। भाग्यहीन की समृद्धि के सदृश अष्टमी का चन्द्रमा अस्त होने पर था। इधर-उधर बिखरी श्याम-कृष्ण मेघ-माला में सौदामिनी कौंधित कामिनी-सी लौक रही थी। सब ओर सन्नाटा छाया हुआ था। केवल नव नारि समागम प्रमत्त मेघ

मगरमा गाढ़ की मरकत के समान सब अलग-अलग ठाकुर बने हुये टर टर करते कानों की झींसियाँ उड़ाने लगते थे। इसी समय सिरी ने काम हुँसी खटखटाई। पूरन जो दिन को चाहे नहीं रहे रात को बाहर उसे यहाँ रहना पड़ता था ऊँघता हुआ आया और किवाड़ खोल दिया। यह आदमी जो इस समय आया लम्बे कद का डाढ़ी रखाये था गलमुच्छे में और गोल टोपी दिये था। अन्दाज से मुसलमान मालूम होता था आते ही बाबू गुलाबचन्द्र को बड़े अदब के साथ झुक के सलाम किया। गुलाबचन्द जानो इसे परख रहे थे बल्कि इन्तजारी करते-करते अलसा से गये थे बोले—बोल जी आपने तो बड़ी देर की।

घेसली—हुजूर, हाँ! देर तो बिला शक हुई। आप जानते हैं ऐसे-ऐसे काम क्या सहज में हो जाते हैं। जरा देर तो हुई पर चीज भी ऐसी है कि हुजूर की खातिरख्वाह पसन्द आवेगी। यों तो बहुत दिनों से इस काम को कर रहा हूँ पर ऐसी चिड़िया कभी मेरे कांपे में नहीं आई। बहुत देर तक हामा-हुज्जती और नखरे के उपरान्त तब जी होने— हुजूर आप जानते हैं ऐसी कौन-सी बात है कि जिसके लिए कोशिश करो और कामयाबी न हो।

गुलाब—हाँ इसमें क्या शक है। इसीलिए तो मैंने आपके सुपुर्द इसे किया। जैसी तुम बैन चिचियाते होना चाहिये। अच्छा तो अब देर क्यों? (पूरन से) पूरन आराम है न?

पूरन—जी हाँ आपका हुक्म पाते ही मैंने सब साफ रक्खा। गुलाब—आराम! अच्छा तो इसका खातिरख्वाह इनाम पावेगा।

मधुप जो चुपचाप मौन साधे यह सब लीला देखता रहा चित्त में बहुत ही सिमाया और कहने लगा—मैं यहाँ ऐसे ठौर का फँसा अब कैसे छुटकारा पाऊँ।

"अपमानम समय पतिता सम्प्रिपाता।"

ममार के कोठुरा-कर मधु ने पान की लालसा से मैं निकला था और
१

हार होगी इस भय से प्रतिवादी का जो तत्त्व और मर्म है उसे न स्वीकार कर अपने ही कहने को पुष्ट करता जाता है और प्रतिपक्षी की बात काटता जाता है। हम कहते हैं इससे लाभ क्या ? प्रतिवादी जो कहता है उसे क्यों न मान लें उसका जी दुखाने से उपकार क्या—

"फलं न किंचित् अशुभा समाप्तिः।"

सिद्धान्त है—

"मुण्ड-मुण्डे मतिर्भिन्ना तुण्डे-तुण्डे सरस्वती।"

बहुत लोग इस सिद्धान्त को न मान जो हम समझे बैठे हैं उसे क्यों न दूसरे को समझावें इसलिये न जानिये कितना तर्क-कुतर्क शुष्कवाद करते हुये काँय-काँय बका करते हैं। अन्त में इसका यही होता है कि दो चित्तों का दुखी होता है। मानता उसके कहने को वही है जिसे उसके कथन में श्रद्धा है। हमारे चित्त में ऐसा आता है कि जो हमने तत्त्व समझ रक्खा है उसे उसी से कहें जिसे हमारी बात पर श्रद्धा हो। मोती की लरियों को कुत्ते के गले में पहिना देने से फायदा क्या ? अस्तु, हमारे प्राचीन आर्यों ने जो बहुत-सी विद्या और ज्ञान छिपाया है उसका यही प्रयोजन है। जिसे इन दिनों के लोग ब्राह्मण पर दोषारोपण करते हैं कि ब्राह्मणों ने विद्या को छिपाया सबों को न पढ़ने दिया।

विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्म्यहम्।
असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा॥

विद्या ब्राह्मण से यों कहती है—मैं तुम्हारा खजाना हूँ मुझे जुगै के रक्खो निन्दक तथा गुण में दोष निकालनेवाले मत्सरी को मत बतलाओ ऐसा करोगे तो मैं तुम-सी अत्यन्त वीर्यवती हूँगी। छान्दोग्य ब्राह्मण में भी ऐसा ही कहा है—

विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम तवाहमस्मि त्वं मां पालय।
अनर्हते मानिने नैवमादा गोपाय मां श्रेयसी तथाहमस्मि
विद्या सार्द्धं म्रियेत न विद्यामूषरे वपेत्॥

कितने लोग ऐसे हैं जिनके मधुर कोमल शब्दों में मानों फूल झरते हों। श्रुति-मनोहर उनके वदनाम्बुजनिःसृत पदावलियों के एक-एक शब्द पर जी लुभाता है। किन्तु कितने कटुवादी लम्पट ऐसा अरुन्तुद बोलनेवाले हैं कि वे जब तक दिन में दो-चार बार मर्मभेदन कर किसी का चित्त न दुखा लें तब तक उन्हें खाना नहीं हजम होता। ऐसे दुष्टों का जन्म ही इसलिये संसार में है कि वे अपने वाग्-बाण से दूसरों का हृदय विदीर्ण किया करें।

"अतीव रोषः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतानाम्।"

वाक्संयम इसीलिये कहा गया है कि कहीं ऐसा न हो कि कोई शब्द हमारे मुख से ऐसा निकल जाय कि उससे दूसरे के चित्त को ठेस पहुँचे। शील के सागर विज्ञ पुरुष राम भरतलाल-से भ्रातृचरित्र एक हैं जो अपना बहुत-सा नुकसान सह लेते हैं पर लेन-देन में कड़ाई के साथ नहीं पेश आना चाहते और न वे दूसरे का जी दुखाते हैं। निश्चय ऐसे लोग महापुरुष हैं स्वर्गभूमि से आये हैं और स्वर्ग में जायँगे। जो परचित्तानुरंजन में लौलीन हैं उनके समान मनुष्य कोटि में ऐसे कहीं कोई होंगे। पर यह छन्दानुवर्तन वैसी चूक नहीं अवकाश पाता है जहाँ ऐंठ-दार-अकड़ की ऊष्मा का अभाव है। अहंकारी को कभी यह बुद्धि होती ही नहीं कि हम किसी के चित्त को न दुखावें वरन् परछिद्रान्वेषण ही में उसे सुख मिलता है। दूसरे की ऐबजोई को वह अपने लिये निज-करामात मानता है। अभिमान से देवदूत और फरिश्ते भी स्वर्ग से च्युत किये गये। तब जिसमें यह शैतानी लक्षण है उसकी तुलना परचित्तानुरंजन के साथ क्योंकर हो सकती है। [illegible] ऐंठ-दार अकड़ अहमन्यता को बहुतायत के साथ सवार रहता है। हमारा यह लेख उन्हीं के लिए विशेष रसायन है। निश्चिन्त जो सामान्य मनुष्य के सामने भी गिड़गिड़ाया करता है उसको इस रसायन की क्या अपेक्षा है।

बहुत से ऐसे भी लोग हैं जिनकी चाल और वजा कुछ ऐसा होता है कि उसे देख चित्त में विषाद और कुढ़न पैदा होती है।

हार होगी इस भय से प्रतिवादी का जो तत्त्व और मर्म है उसे न स्वीकार कर अपने ही कहने को पुष्ट करता जाता है और प्रतिपक्षी की बात काटता जाता है। हम कहते हैं इससे लाभ क्या? प्रतिवादी जो कहता है उसे क्यों न मान लें उसका जी दुखाने से उपकार क्या—

“पक्षो न किंचित् मधुना समाप्ति।”

सिद्धान्त है—

“मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना तुण्डे-तुण्डे सरस्वती।”

बहुत लोग इस सिद्धान्त को न मान जो हम समझे बैठे हैं उसे क्यों न दूसरे को समझावें इसलिये न जानिये कितना तर्क-कुतर्क शुष्कवाद करते हुये कांव कांव बका करते हैं। अन्त में इसका यही होता है कि जी कितनों का दुखी होता है। मानता उसके कहने को वही है जिसे उसके कथन में श्रद्धा है। हमारे चित्त में ऐसा आता है कि जो हमने तत्त्व समझ रक्खा है उसे उसी से कहें जिसे हमारी बात पर श्रद्धा हो। मोती की लड़ियों को कुत्ते के गले में पहिना देने से फायदा क्या? अस्तु, हमारे प्राचीन आर्यों ने जो बहुत-सी विद्या और ज्ञान छिपाया है उसका यही प्रयोजन है। जिसे इन दिनों के लोग ब्राह्मण पर दोषारोपण करते हैं कि ब्राह्मणों ने विद्या को छिपाया सबों को न पढ़ने दिया।

विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्।
असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा॥

विद्या ब्राह्मण से यों कहती है—मैं तुम्हारा खजाना हूँ मुझे पूर्ण के रक्खो निन्दक तथा गुण में दोष निकालनेवाले मत्सरी को मत बतलाओ ऐसा करोगे तो मैं तुम-सी अत्यन्त वीर्यवती हूँगी। छान्दोग्य ब्राह्मण में भी ऐसा ही कहा है—

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम तवाहमस्मि त्वं मां पालयस्व।
अनर्हते मानिने नैव मादा गोपाय मा श्रेयसी तथाहमस्मि
विद्या सार्धं म्रियेत न विद्यामूषरे वपेत्॥

कितने लोग ऐसे हैं जिनके मधुर कोमल शब्दों में मानों फूल झरते हों। मति-मनोहर उनके वदनाम्बुजनिःसृत पदावलियों के एक-एक शब्द पर भी सुभगता है। किन्तु कितने कटुवादी खल ऐसा अरुन्तुद बोलनेवाले हैं कि वे जब तक दिन में दो चार बार मर्मताड़न कर किसी का चित्त न दुखा लें तब तक उन्हें खाना नहीं हजम होता। ऐसे दुष्टों का जन्म ही इसलिये संसार में है कि वे अपने वाग्-बाण से दूसरों का हृदय विदीर्ण किया करें।

"अतीव रोषा कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतानाम्।"

वाक्संयम इसीलिये कहा गया है कि कहीं ऐसा न हो कि कोई शब्द हमारे मुख से ऐसा निकल जाय कि उससे दूसरे के चित्त को ठेस पहुँचे। दीन के सागर कितने पुरुष एक बारगी-से आदर्शचरित्र ऐसे हैं जो अपना बहुत-सा नुकसान सह लेते हैं पर लेन-देन में कड़ाई के साथ नहीं पेश आना चाहते और न व दूसरे का जी दुखाते हैं। निश्चय ऐसे लोग महापुरुष हैं स्वर्गभूमि से आये हैं और स्वर्ग में जायेंगे। जो परचित्तानुरंजन में लीनलीन हैं उनसे समस्त मनुष्य कोटि में ऐसे नहीं कोई होंगे। पर यह छन्दानुवर्तन ऐसे कुछ नहीं अवकाश पाता है जहाँ दर्प-दाह-ज्वर की ऊष्मा का प्रभाव है। अहंकारी को कभी यह बुद्धि होती ही नहीं कि हम किसी के चित्त को न दुखावें वरन् परछिद्रान्वेषण ही में उसे सुख मिलता है। दूसरे की कमजोरी को वह अपने लिये दिल-बहलाव मानता है। अभिमान से देवदूत और फ़रिश्ते भी स्वर्ग से च्युत किये गये। तब जिसमें यह शैतानी घमण्ड है उसकी तुलना परचित्तानुरंजन के साथ क्योंकर हो सकती है। यह दर्प-दाह-ज्वर धनधान्य को बहुतायत के साथ सवार रहता है। हमारा यह लेख उन्हीं के लिये विशेष रसायन है। निष्किंचन जो सामान्य मनुष्य के सामने भी गिड़गिड़ाया करता है उसको इस रसायन की क्या अपेक्षा है।

बहुत से ऐसे भी लोग हैं जिनकी चाल और ढंग कुछ ऐसा होता है कि उसे देख चित्त में विकार और घृणा पैदा होती है।

३२—खटका

पढ़ने तो पढ़नेवाले ही इस बटक का नाम सुन अपने जी में खटका करेंगे कि यह क्या खटके की बात सुना रहा है। पाठक ! यह बात ऐसी ही है। ब्रह्मा की सृष्टि में कोई मनुष्य एक पल के लिये भी इस खटके-सटके से खाली नहीं रहता। जबतक जाया नहीं हुई है आने को उस माता का मोल-बिसात करने वाला कोई नहीं है। बहुत-सा टटका टप-तप गंड-जप के बाद बरपाली के कुछ आगम प्रगट हुआ भी तो गर्भपात का खटका लगा रहता है। धरती पर आये ईश्वर ने बड़ी कृपा की पत्थर पर दूब जमी तो दिन उठ एक न एक बीमारी का खटका लगा रहता है और बड़े हुये तो अपने साथियों में खेलते हुये हारने-जीतने का खटका रहता है। स्कूल में मास्टर साहब साक्षात् यमराज के अवतार, घर में बाप-माँ की घुड़की और झिड़की का खटका। बरसवें दिन परीक्षा और दरजा चढ़ाये जाने का खटका। कुछ याद नहीं है बिना इम्तहान दिये बनता नहीं। पास हुये तो अपने साथियों में नाक नीची होती है, साल भर तक किताब के साथ लिपटे रहे हिस्टरी याद है तो मैथमैटिक्स का खटका है। इधरवाले और अपने पासवाले से पूछ-पूछ लिखते तो वहाँ इम्तहान के कमरे में गार्ड लोगों की सख्त मिजाजी का खटका है। और, किसी तरह इम्तहान दे-देवाय फारिग हुये तो अब दो एक नम्बर कम रहने का खटका रहा। मुम्तहिन साहब का मिजाज दुरुस्त रहने को रोज देवता-पितर मनाया करते हैं और बड़े हुये जवानी का जोश सवार हुआ शरीर की एक-एक रग फड़क रही है ऐसे समय सबसे निराला खटका जोश का रहता है जिसका किसी ओर तब खाला बहुत ही लाजम है। कबीर किसी ने कहा है—

"माया [illegible] लपेट में लागी कम्प कबीर।
थोड़ी माया बालक में और बरैया पेट॥"

मगर ऐसी बुरी बला है कि सौ में निन्नानवे इसके रोगी होंगे । और, मौत के रोग से बचे तो अब जीविका की चिन्ता सवार हुई । सार्टिफिकेट ले सब ओर घूम आये पंखा कुली तक की जगह न मिली । हजार-हजार मुश्किलों से कहीं कोई जगह मिली भी तो डाक्टर साहब से हेल्थ सार्टिफिकेट का खटका । क्या जाने डाक्टर साहब की पनचक्कर आफिस में उस समय नशा सवार हो जाय । परदेश में नौकरी हुई तो घरवालों की सही सलामती का खटका । घर पर हुये तो काम की जियादती से दफ्तर न पहुँच पाने का खटका । प्रतिष्ठा और पद्धति बनाये रहने का खटका । ईश्वर सानुकूल हुये और सब निबटा गया तो बरसी का खटका रहा । हाकिम आला से बुड्डों की शिकायत का खटका । तबदील में आ जाने का खटका । गुड सरविस का खटका । स्वामी की पूरन-सा पेन्शन का दिन ताक रहे हैं १ वर्ष बाकी है, अब ५ ही रहे अब केवल छही महीने रहे अन्ततोगत्वा आधे या तिहाई पर पेन्शन हुई । ऐसे बूढ़े बैल को कौन बाँध कर भूसा दे ? यह सरकार ही का घर है कि ऐसों का भी बेड़ा पार होता जाता है । निदान पेन्शन हुई तो घर में बैठे-बैठे मन नहीं लगता आस-पास की रियासतों में टटोलने लगे । खेती के बैल को घूमने से काम । इधर लड़के पढ़-लिखकर तैयार हुये उन्हें किसी काम में लगा देने का खटका सवार हुआ । उनको नौकरी मिलने के लिये जैसे-तैसे [illegible] करते फिरे । प्रारब्ध और नसीबा अच्छा हुआ तो उन्हें भी कहीं नौकरी मिल गई । अस्तु, नौकरी पेशेवालों का खटका तो खटक गया । अब उनको लिखते हैं जो रोजगार की तरफ मुड़ गये हैं ।

इतर आदमी की पूँजी लूट और अनेक तरह की बेईमानी कर असंख्य धन इकट्ठा किया तो सही पर दिवाला पिटने का खटका न गया पत्निया कम निकली है दाम कमाता जाता है रातो दिन हिसाबों की चिट्ठियाँ लिखते-लिखते कमर झुक गई, आँख अन्ध हो गई, पर तो भी पूँजी घूमघाम में पायदारी न आई । हिसेदार हरदम पूँजी खूबने को मुस्तैद रहते हैं भाई को सीधा-सादा समझकर साथ बाजा में लिपटे रहे तो भी कमा न

३२—खटका

पहले तो पढ़नेवाले ही इस खटके का नाम सुन अपने जी में खटका करेंगे कि यह क्या खटके की बात सुना रहा है। पाठक ! यह बात ऐसी ही है। ब्रह्मा की सृष्टि में कोई मनुष्य एक पल के लिये भी इस खटके-सटके से खाली नहीं रहता। जबतक माया भरी हुई है आये को उस माया का मोम-विनाश करने वाला कोई नहीं है। बहुत-सा टोटका तन-मन मंत्र-यन्त्र के बाद बरसाली के कुछ आगम प्रकट हुआ भी तो गर्भस्राव का खटका लगा रहता है। धरती पर आये ईश्वर ने बड़ी कृपा की पत्थर पर दूब जमी तो नित उठ एक न एक बीमारी का खटका लगा रहता है और बड़े हुये तो अपन साथियों में खलते हुए हारने-जीतने का खटका रहता है। स्कूल में मास्टर साहब साक्षात् यमराज के अवतार, घर में बाप-माँ की घुड़की और झिड़की का खटका। बरसवें दिन परीक्षा और दरजा चढ़ाये जाने का खटका। कुछ याद नहीं है बिना इम्तहान दिये बनता नहीं। फेल हुये तो अपन साथियों में आँख नीची होती है, साल भर तक किताब के साथ लिपटे रहे हिस्टरी याद है तो मैथमेटिक्स का खटका है। इयारबाजी और अपने पासवाले से पूछ-पूछ लिखते तो यहाँ इम्तहान के कमरे में गार्ड लोगों की सख्त निगाही का खटका है। खैर, किसी तरह इम्तहान दे—देवाय फ्लरिंग हुये तो अब दो एक नम्बर कम रहने का खटका रहा। मुमतहिन साहब का मिजाज दुरुस्त रहने को रोज देवता-पितर मनाया करते हैं और बड़े हुये जवानी का जोश सवार हुआ शरीर की एक-एक रग फड़क रही है इस समय सबसे जियादह खटका मौत का रहता है जिसका किसी बार न आना बहुत ही ताज्जुब है। अच्छा किसी ने कहा है—

"माया हरफ लपेट में सामी बाजम बपेट।
वोही माया समझ में पीर जरया पेट॥"

मगर ऐसी बुरी बला है कि सौ में निन्नानवे इसके रोगी होंगे। खैर, कॉलेज के रोग से बचे तो अब जीविका की चिन्ता सवार हुई। सार्टिफिकेट ले सब ओर घूम आये पंखा कुली तक की जगह न मिली। हजार-हजार मुश्किलों से कहीं कोई जगह मिली भी तो डाक्टर साहब से हेल्थ सार्टिफिकेट का खटका। क्या जाने डाक्टर साहब को मनचाहकर ऑफिस में उस समय क्या सवार हो जाय। परदेश में नौकरी हुई तो घरवालों की सही सलामती का खटका। घर पर हुये तो काम की जिम्मेदारी से एरियर न पड़ा रह जाने का खटका। प्रतिष्ठा और पदोन्नति बनाये रहने का खटका। ईश्वर सानुकूल हुये और सब निबटा गया तो तरक्की का खटका रहा। हाकिम आला के दुष्टों की शिकायत का खटका। डायफीस में आ जाने का खटका। मुक्त सर्विस का खटका। स्वामी जी पूरा-सा पेनशन का दिन ताक रहे हैं ६ वर्ष बाकी हैं अब ५ ही रहे अब केवल छः ही महीने रहे, अन्ततोगत्वा आये या विदाई पर पेनशन हुई। एक बूढ़े बैल को पेंशन बांध कर भूसा दे? यह सरकार ही का कर है कि इन्हों पर भी बेहद पार होता जाता है। निदान पेनशन हुई तो घर में बैठे-बैठे मन नहीं लगता आस-पास की रियासतों में टटोलने लगे। तेली के बैल को घूमने से काम। इधर लड़के पढ़-लिखकर तैयार हुये उन्हें किसी काम में लगा देने का खटका सवार हुआ। उनकी नौकरी दिलाने के लिये बँगला-बँगले दिल्ली तारबाजार करते फिरे। प्रारब्ध और वसीला अच्छा हुआ तो उन्हें भी कहीं नौकरी मिल गई। अस्तु, नौकरी पेशेवालों का खटका तो खटक गया। अब उनसे सिखते हैं जो रोजगार की तरफ झुक हुये हैं।

बहुत आदमी भी मुट्ठी घूस और अनेक तरह की बेईमानी कर असंख्य धन इकट्ठा किया तो सही पर निपाता निठल्ल का खटका न गया बहुत बस निकली है काम चलता जाता है रातो दिन दिवालियों की चिट्ठियां लिखते-लिखते उमर झुक गई, आंख अन्ध हो गई, पर तो भी पूंजी मूलधन में भापन्टी न आई। हिस्सेदार हरदम मुट्ठी भूलने को मुस्तैद रहते हैं भाई को सीता-सारा नवरतन पाप कामों में लिपटे रहे तो भी मता न

छूटा। भतीजे ऐसे चट्टर और निर्दयी जनमें कि चाहें तो चाचा साहब का हाड़-मांस तक चबा जावें। चचा को भी इन भतीजों का हरदम खटका बना ही रहता है। चाहें तो उन्हें निर्मूल कर डालें।

जितनों को के० सी० एस० आई० रायबहादुर बनने का खटका पड़ा है कौंसिल की मेम्बरी के लिये दिलोजान से कोशिश कर रहे हैं। कलक्टर, कमिश्नर आदि हाकिमों की खुशामद करते-करते उनके बंगलों की चौखट पर माथा और नाक रगड़ते-रगड़ते नाक घिस गई, पर जब काम पड़ा तो उनका मिथ्या दंभ और स्वार्थपरता देख लोगों ने उन्हें न चुना। हमीं चुने जायें इसलिये बहुत छटपटाने पर अन्त को सब ओर से महरूम और निराश हो अपना-सा मुँह लिये बैठ रहे। जुआ खेलने गये बड़ा भारी दाँव लगा दिया, यहाँ तक कि एक ही दाँव में या तो दस हजार आते हैं या कौड़ी के तीन-तीन होते हैं दाँव का खटका लग रहा है पौ आवे या छक्का। इसी तरह रोजगारियों को चुङ्गी और टैक्स का खटका। संपादकों को राजविरुद्ध लेख का खटका। गवर्नमेंट को शासन प्रणाली में उमदा से उमदा राय देते रहे सरकार का राज्य अटल होने के लिये अपने लेख द्वारा प्रजा में राजभक्ति स्थापित करने की सदा चेष्टा करते रहे उनका कोई धन्यवाद या इनाम नहीं। कर्मचारियों के निन्दित काम और अत्याचार से खिन्न हो जोश में आय कभी कोई बात किसी संपादक ने लिख डाली। बस उसके जी की आ बनी मुकदमा कायम हो गया ईश्वर ही उसका सहायक हो तो छुटकारा हो इत्यादि।

संसार के यावत् मनुष्य एक क्षण भी तरद्दुद से खाली नहीं। दिन-रात के खटके के खटके में पड़े भटके हुये हैं जिससे शान्ति को चित्त से अवकाश ही नहीं मिलता। बटलोई में एक चावल टटोलने की भाँति थोड़े से उदाहरण खटकों के यहाँ दिखलाये गये। अजी जीते जी तो खटके से कोई खाली रहता ही नहीं मरने पर भी जन्म लेने का खटका लगा रहता है। धर्माधर्म साथ ले यमराज के पाहुने हुये अपने किये हुये पाप या पुण्य के अनुसार स्वर्ग-सुख या नारकी यातना भोग फिर जन्मे, फिर मरे इस तरह पर जन्म-मरण

को इस अनादि-काल में पड़ भवसागर की चंचल और तरल तरङ्गों में गोता खाते हुए ऐसे ही कोई भाग्यवान् सुकृती होवें जो परमात्मा के निर्वाण पद के अधिकारी हो सदा के लिये भटका से मुक्त हो जाता है।

मई १८६६